आत्म धर्म

दिव्य-पुरुष

८७वीं-जन्मजयंती

अंक नं. [३७२]

हे मुक्ति-पथिक! शासन तुमसे उजियारा,
श्रद्धा के सुमन चढ़ाता है जग सारा।

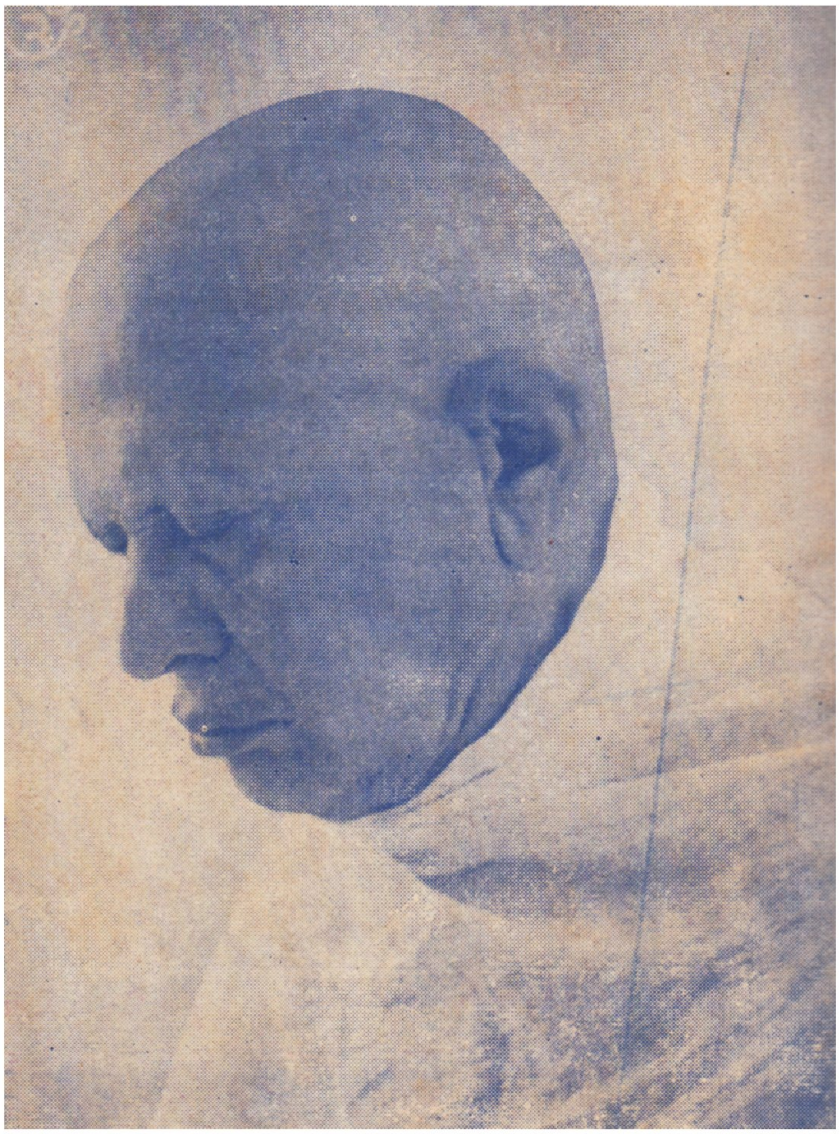

पूज्य गुरुदेवश्री का प्रिय ध्यान

समयसार के प्रारंभ की १६ गाथाएँ, ४७ शक्तियाँ, गाथा ४९ के अव्यक्त संबंधी छह बोल तथा प्रवचनसार के ४७ नय, गाथा १७२ के अलिंगग्रहण के २० बोल और श्रीमद् राजचंद्र के 'स्वद्रव्य के रक्षक त्वरा से होओ' आदि दस बोल, यह विषय पूज्य गुरुदेव को अत्यंत प्रिय होने से वे सदा प्रातःकाल उनके स्मरण-मनन-चिंतनपूर्वक ध्यान करते हैं।

"सत्पुरुष के जीवन में निश्चय-व्यवहार का सुमेल"

हे गुरुदेव! आपकी पवित्र अंतर्दृष्टि में त्रिकाली शुद्ध निजकारणपरमात्मा की ज्ञानानंदमय स्वानुभूति की ज्योति निरंतर वृद्धिंगत हो रही है और उसके साथ व्यवहार का सुसामंजस्य भी वर्त रहा है। स्वानुभूति के आनंद के साथ वर्तते हुए रागांश में शुद्धात्मा का अचिंत्य माहात्म्य आपके प्रवचनों में झलक रहा है। शुद्धात्मप्रेमी जिज्ञासुओं को आप निरंतर स्वानुभूतियुक्त अमृतभोजन परोस रहे हैं। दूर-दूर के जिज्ञासुओं की शुद्धात्मपिपासा मिटाने के लिये वात्सल्यभाव से विहार करके, दिव्य उपदेश द्वारा आप शुद्धात्मा की आश्चर्यकारी महिमा समझा रहे हैं। अनेक स्थानों पर श्री जिनेन्द्रदेव की जिनबिम्ब पंचकल्याणक एवं वेदी-प्रतिष्ठाएँ आपके उपदेश के फलरूप अत्यंत उल्लास तथा भक्तिपूर्वक आपकी छत्रछाया में हुई हैं। देव-गुरु-धर्म के प्रति अपार भक्तिवश अनेक तीर्थभूमियों में आपने संघसहित तीर्थ-वंदना-यात्रा की है। आपका पवित्र जीवन स्वाध्याय-मनन-चिंतवन-ज्ञान-ध्यानपूर्वक शुद्धात्मानुभूति में निरंतर वृद्धिंगत हो रहा है।

—इसप्रकार अनेकरूप से जिनका व्यवहार निश्चयरूप स्वानुभूति के माहात्म्य को प्रसिद्ध करता हुआ पात्र श्रोताओं के जीवन में निश्चय-व्यवहार के निर्माण में महान आदर्शरूप बन रहा है—ऐसे पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी को उनकी ८७वीं जन्मजयंती के मंगल अवसर पर अत्यंत भक्ति एवं बहुमानपूर्वक कोटि-कोटि वंदन।

रामजीभाई माणेकचंद दोशी
भूतपूर्व प्रमुख—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रति

श्रद्धांजलि

[नवनीतलाल चुन्नीलाल जवेरी, प्रमुख श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़]

जे पूरव शिव गये, जाहिं, अरु आगे जैहैं,
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।
विषय-चाह-दवदाह, जगत-जन अरनि दझावै,
तास उपाय न आन ज्ञानघनघान बुझावै।
पुण्यपाप फलमांहि, हरख बिलखौ मत भाई,
यह पुद्गल परजाय उपजि विनशे फिर थाई।
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग दंदफंद नित आतम ध्याओ।

परम पूज्य गुरुदेव के उपदेश का मूलभूत सार पंडित प्रवर श्री दौलतरामजी कृत छहढाला के उपरोक्त दो छंदों में आ जाता है। २४वें तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी कि जिनका शासन वर्तमान में चल रहा है, आजकल जो ज्ञानी हैं, उनका तथा भविष्य में जो ज्ञानी होंगे, उनका भी यही उपदेश रहेगा कि—संसार की वस्तुओं में आत्मज्ञान ही एक प्राप्त करनेयोग्य बहुमूल्य वस्तु है और वही शांति एवं परम सुख का धाम है। बाकी सब वस्तुएँ तो जीव को निरंतर राग की अथवा चाह की आग में जलाकर दु:खी करती हैं, इसलिये उस आग को ज्ञानरूपी बादलों के जल से बुझाना चाहिये... दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है।

दुनिया में जो-जो वस्तुएँ हमें दिखायी देती हैं, वे सब पुद्गल की पर्यायें हैं और वे पर्यायें, आत्मा ने तीव्र या मंद, पुण्य-पापरूपी जो भाव किये हों, उनके फलरूप सुखद या दु:खद संयोगोंरूप से जीव के आसपास उपस्थित होती हैं, इसलिये पंडितजी कहते हैं कि उस पुण्य या पाप के फल में हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन पुद्गलों का

स्वभाव ही ऐसा है कि वे उपजते हैं, विनशते हैं और पुनः उत्पन्न होते हैं। इसलिये हमें यही लाख बातों का सार सत्य दृष्टि से हृदय में धारण करना है कि—दुनिया के समस्त राग-द्वेषरूप दंदफंद को छोड़कर नित्य आत्मा का ध्यान करें।

लगभग बीस वर्ष पहले, पूज्य गुरुदेव दक्षिणयात्रा के समय बम्बई पधारे थे। उस समय हमारे एक मित्र ने समाचार दिये और व्याख्यान सुनने का आग्रह किया कि उनका व्याख्यान अत्यंत आत्मरस से भरपूर है। मुझे तत्त्वज्ञान की तीव्र पिपासा रहती थी परंतु तब तक वह प्यास शांत नहीं हुई थी; मैं किसी ज्ञानी की खोज में ही रहता था। हम तो जन्म से दिगम्बर थे, तत्त्वज्ञान की रुचि और थोड़ा अभ्यास भी था, इसलिये यह प्रतीति थी कि दिगम्बर धर्म ही सनातन सत्य धर्म है; और जब ऐसा सुना कि वे तो पहले स्थानकवासी साधु थे; तब विचार आया कि उन्हें दिगम्बर धर्म का कैसा ज्ञान होगा? परंतु ज्ञानियों का व्याख्या सुनने की हार्दिक इच्छा तो रहती ही थी, इसलिये गुरुदेव का व्याख्यान सुनने गया और जब गहन सिद्धांतों का अत्यंत सरल भाषा में अत्यंत स्पष्ट प्ररूपण सुना, तब एक ही व्याख्यान में दृढ़ श्रद्धा हो गई कि गुरु हों तो यही होना चाहिये... यही मेरी ज्ञानपिपासा शांत करेंगे।

तब से आजतक दिन-प्रतिदिन समागम बढ़ता ही गया और धीरे-धीरे अधिकाधिक सोनगढ़ के संपर्क में रहने का प्रयत्न करने लगा। उनका एक परम सत्य वाक्य है कि—'जिन्हें भव का भय लगा हो, उन जीवों को यह बात रुचेगी।' उनके पास आत्मज्ञान के सिवा और कुछ देने को नहीं होता। आज लाखों दिगम्बर भारत में चारों ओर उनके अनुयायी हो गये हैं तथा स्थानकवासी और श्वेताम्बर भी अच्छी संख्या में उनके उपदेश का लाभ ले रहे हैं।

ऐसे परम पूज्य गुरुदेव की इस ८७वीं जन्मजयंती पर ऐसी भावना भाते हैं कि वे शीघ्र अपनी आत्मसाधना संपूर्ण करके भव्यजीवों को उस आत्मसाधना के मार्ग में लगायें।

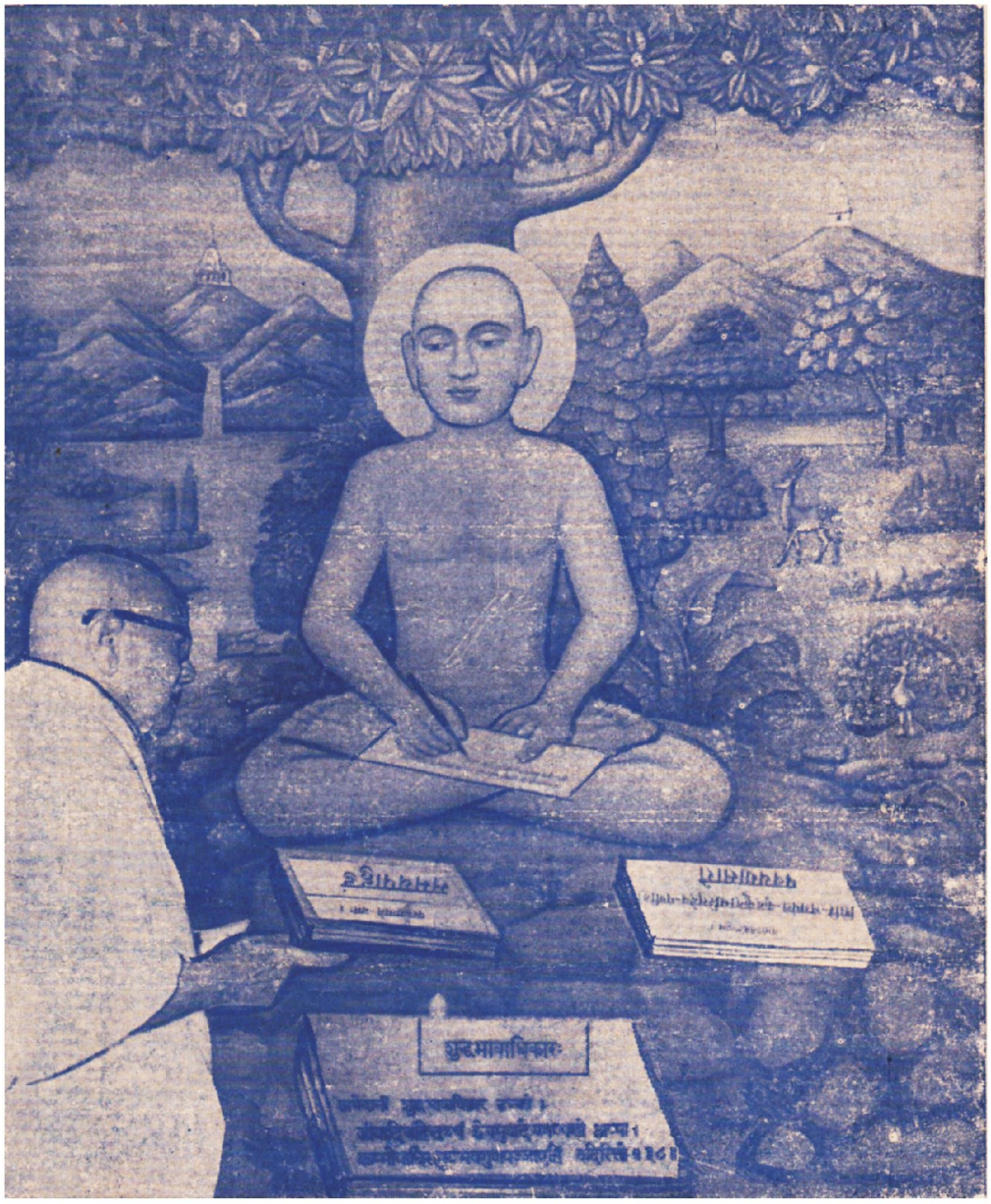

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव महातत्त्व से भरपूर
प्राभृतरूपी पर्वत बुद्धिरूपी सिर पर उठाकर अपने मार्गानुसारी
श्री कानजीस्वामी को वात्सल्य पूर्वक अर्पित कर रहे हैं।

गुरुदेव का असीम उपकार

इस विश्व में सर्वश्रेष्ठ पदार्थ आतमा है; और ऐसा श्रेष्ठ आत्मा जिन्होंने प्रदान किया, उनके उपकार का कथन ही जहाँ नहीं किया जा सकता, वहाँ उनके अपार उपकार का बदला देने का कार्य तो असंभव ही होगा, उसमें आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों पात्र जीव को कृतज्ञता की उग्र भावना से श्रीगुरु के प्रति अर्पणता में वृद्धि होती है, त्यों-त्यों उस जीव पर श्रीगुरु का उपकार बढ़ता ही जाता है।

आत्मानुशासन में कहा है कि—जगत में जो गड्ढे होते हैं, उनमें पत्थर आदि द्रव्य डालने से वे पूर जाते हैं, परंतु तृष्णारूपी गड्ढा उससे विचित्र स्वभाववाला है; उसमें ज्यों-ज्यों द्रव्य डाले जाते हैं, त्यों-त्यों वह गड्ढा अधिक गहरा होता जाता है।

उसीप्रकार श्रीगुरु का उपकार भी एक अद्‌भुत आश्चर्य है। ज्यों-ज्यों उनके प्रति अर्पणता में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों उस पात्र जीव की परिणति अधिकाधिक विशुद्धता को प्राप्त होती है और साथ ही साथ वह जीव आश्चर्यकारी सातिशय पुण्यबंध को प्राप्त होता है। उस विशुद्धि तथा पुण्य में सत्पुरुष ही निमित्त है; इसलिये उनके प्रति कृतज्ञता की भावना से जितनी अधिक अर्पणता की जाती है, त्यों-त्यों वे सत्पुरुष उसके आत्महित में विशेष-विशेष निमित्तभूत होते जाते हैं।—इसप्रकार उनका उपकार तो बढ़ता ही रहता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आत्मदाता श्रीगुरु के उपकार का बदला असंभव ही है। ऐसे असीम एवं निष्कारण उपकारी गुरु के प्रति सर्वस्वार्पण करना, वह शिष्य के हित का कारण है।

सत्पुरुष को शिष्य की भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है; परंतु जबतक शिष्य को गुरु के असीम उपकार की प्रतीति होकर उनके प्रति भक्ति-अर्पणता न आये, तब तक उनका दिया हुआ ज्ञान परिणमित नहीं होता। इसलिये अपने हितहेतु श्रीगुरु के प्रति भक्ति-अर्पणता आये, तभी कल्याण होता है—ऐसी वस्तुस्थिति है। ❁

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रति

८७वीं जन्मजयंती के अवसर पर

८७ भक्ति-पुष्पों की अंजलि

१. अहा! भगवान आत्मा... भगवान ज्ञानस्वभाव... भगवान आनंदस्वभाव... भगवान सर्वज्ञस्वभाव.. भगवान सुखस्वभाव... वही उसका स्वरूप है। द्रव्य भगवान, गुण भगवान, पर्याय भगवान—तीनों एकरूप हो गये। प्रगट पर्याय भगवान हो गई। समयसार में उसे भगवती प्रज्ञाछैनी कहा है। द्रव्य भगवत्स्वरूप है, गुण भगवत्स्वरूप है, प्रज्ञा भगवतीस्वरूप है, (साधकदशा) और पूर्णदशा भी भगवतीस्वरूप है। (-इसप्रकार भगवान आत्मा का घोलन करते-करते पूज्य गुरुदेव ने सोनगढ़ से विहार किया था)।

२. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से अत्यंत भिन्न है; दूसरे, एक जीवद्रव्य से विकार अत्यंत भिन्न है; तीसरे, एक शुद्ध जीव से निर्मल पर्याय भी भिन्न है; क्योंकि द्रव्य पर्याय का स्पर्श नहीं करता और पर्याय, वह द्रव्य का स्पर्श नहीं करती। दृष्टि तो द्रव्य पर पड़ी है परंतु द्रव्य का वेदन नहीं है, वेदन तो पर्याय का होता है।

३. पर्याय की स्वतंत्रता जिसे नहीं जमती, उसे द्रव्य-गुण जो कि अव्यक्त शक्तिस्वभाव है, उसकी स्वतंत्रता जम ही नहीं सकती; वर्तमान अंश स्वतंत्र है, यह बात जिसे बैठ जाये, उसी को द्रव्य की स्वतंत्रता बैठ सकती है।

४. भगवान तो कहते हैं कि जिसे चैतन्य आत्मा की प्रतीति नहीं है, पूर्णानंद का नाथ अंतर में विराजमान है, उसकी जिसे श्रद्धा नहीं है, वे सब चलते-फिरते मुर्दे हैं और उनके व्रत-तप आदि सब मूर्खतापूर्ण हैं। जिन्हें पूर्णानंद भगवान की श्रद्धा है, ज्ञान है, भान है, वे संसार में रहते हुए भी चलते-फिरते सिद्ध हैं।

५. यह संपूर्ण लोक भगवान के समूह से भरा भंडार है। प्रत्येक जीव स्वभाव से भगवान है; देहमंदिर में भगवान जिनेन्द्रदेव विराजमान हैं।

६. समयसार सूर्य है; उसके तेज में कोई कमी नहीं रहती... वह अद्वितीय सूर्य है। शांतिपूर्वक विचार करे तो खबर पड़े। अरे! यह भव टालने का अवसर है... दुनिया क्या कहेगी, उसकी चिंता न कर!

७. अहा! सम्यग्दर्शन होने से आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में आनंद का जन्म होता है; असंख्य प्रदेश आनंद से उछलते हैं; आनंद का जन्मधाम निजपरमात्मतत्त्व ही सम्यग्दर्शन का कारण है।

८. जिसे पुण्य का प्रेम होगा, उसे आत्मा का प्रेम नहीं आयेगा; पुण्य अर्थात् कषायभाव कहो या विष कहो; वह विष आत्मा का घात कर देता है। पुण्यभाव आत्मा का घातक है, इसलिये पुण्य के प्रेमवाले को आत्मा का प्रेम नहीं आ सकता।

९. तेरे स्वभावसागर की आसातना न हो परंतु आराधना हो, उसकी यह बात है। आत्मा में एक-एक गुण की अनंती शक्ति शुद्ध है; ऐसे अनंत-अनंत गुणों की शुद्धता का आश्रय जो परिणति लेती है, उस परिणति को शुद्धत्वपरिणमन कहते हैं; उसे आत्मा की आराधना कहते हैं।

१०. जिसके अंतर में आत्मा को समझने की सच्ची लगन एवं उत्कंठा जागृत हो, उसे अंतर में उसका मार्ग मिले बिना नहीं रहता। अपनी लगन के बल से अंतर में मार्ग करके वह आत्मस्वरूप को प्राप्त करता ही है।

दिव्य-पुरुष 卐 卐 卐

११. जिसप्रकार केवलीभगवान पर के कर्ता या भोक्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता हैं; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी पर के कर्ता या भोक्ता नहीं, मात्र ज्ञाता ही हैं। राग आता है, उसके भी ज्ञाता ही हैं। असंख्य प्रकार के शुभभाव हैं, वे सहज हैं, उनका कर्ता जीव नहीं है। जिस समय जिसप्रकार का राग आता है, उसप्रकार के संयोग की ओर उनका लक्ष जाता है, उसके ज्ञाता हैं।

१२. व्रत, तप, जप से आत्मप्राप्ति होगी—वह जिसप्रकार शल्य है, उसीप्रकार शास्त्राभ्यास से आत्मा प्राप्त होता है—ऐसी जिसकी मान्यता है, वह भी शल्य है। आत्मवस्तु की ओर दृष्टि करते ही आत्मप्राप्ति होती है।

१३. आँख को रेत उठाने का कार्य सौंपना, जिसप्रकार योग्य नहीं है, उसीप्रकार आत्मा को राग करने का काम देना, वह भी अयोग्य है अर्थात् वह उसका कार्य नहीं है।

१४. अनंत प्रतिकूल द्रव्य आ जाये तो आत्मा उनसे किंचित् भी चलायमान नहीं होता। तीव्र से तीव्र अशुभ परिणाम हों, उनसे भी ध्रुव आत्मा विचलित नहीं होता और एकसमय की पर्याय से भी आत्मा चलायमान नहीं होता।—ऐसे अगाध सामर्थ्यवान ध्रुव आत्मा को लक्ष में लेने से भवभ्रमण का अंत आता है।

१५. मुझे बाहर का कुछ चाहिये—ऐसा माननेवाला भिखारी है; मुझे तो अपना आत्मा ही प्राप्त करना है, ऐसा माननेवाला बादशाह है। आत्मा अचिंत्य शक्ति का स्वामी है; जिस क्षण वह जागृत हो, उसी क्षण जागृत ज्योति आनंदस्वरूप अनुभव में आ सकता है।

१६. निजस्वस्वरूप ही तीर्थस्वरूप है; उसमें प्रवेश करने पर जो पर्याय प्रगट होती है, वह मोक्ष में जाने का उपाय है।

१७. जौहरी हीरे की परीक्षा करता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि चैतन्य हीरे की परीक्षा करता है कि मेरे चैतन्यहीरे में संसार ही नहीं है।

८७ वीं-जन्मजयंती

१८. आत्मद्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें प्रविष्ट होने के लिये जैसा चाहिये, वैसा कारण न दे तब तक कार्य नहीं हो सकता।

१९. शुभाशुभभावों से बचने का उपाय यही है कि आत्मा में वे भाव हैं ही नहीं—ऐसी दृष्टि करना।

२०. राग से भिन्न हूँ... राग से भिन्न हूँ... स्वभाव से एकमेक हूँ... स्वभाव से एकमेक हूँ—ऐसे संस्कार तो डाल! ऐसे दृढ़ संस्कारों द्वारा भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है।

२१. प्रथम चारित्रदोष टालने का प्रयत्न करता है, उसकी अपेक्षा पहले दर्शनशुद्धि के लिये प्रयत्न कर! दृष्टि में विकल्प का त्याग तो नहीं करता और बाह्य त्याग कर बैठता है, वह मिथ्यात्व के ही पोषण का कारण है।

२२. पशु की विष्टा (गोबर आदि) मिलने पर गरीब स्त्रियाँ खुश हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर सेठ-साहूकार प्रसन्न हो जाते हैं, परंतु विष्टा और धनादि में कोई अंतर नहीं है; एकबार आत्मा का भंडार देख ले तो बाह्य धन-वैभव की निर्मूल्यता भासित हो।

२३. सम्यग्दर्शन हुआ तो सिद्ध के दर्शन हो गये, जिनेश्वर का लघुनंदन बन गया।

२४. जिसने अपने चैतन्य के साथ गाँठ (प्रीति) बाँधी है, ऐसा सम्यग्दृष्टि तीन लोक के नाथ के साथ भी गठबंधन नहीं करता। अपने आत्मा ने अनंत आत्माओं को उदर में समा रखा है, अनंत परमात्मा जिसके ध्रुवपद में समाये हुए हैं—ऐसा आत्मा अन्य को नाथ क्यों बनायेगा?

२५. भाई! तुझे प्राप्त करने के लिये तेरी श्रुतज्ञान की पर्याय ही बस है! दूसरा यह करूँ और वह करूँ, ऐसी तो बात ही नहीं है। यह तो सीधी-सच्ची बात है। अंतरंग प्रेम द्वारा (रुचि द्वारा) उस ज्ञान को अंतर्मुख करने से उस पर्याय को द्रव्य का आलंबन प्राप्त होता है और आनंद का स्रोत बहता है।

दि व्य - पु रु ष 卐 卐 卐

२६. देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि भाई! तेरी महिमा तुझे आये, उसमें हमारी महिमा आ जाती है। तुझे अपनी महिमा नहीं आती तो हमारी महिमा भी वास्तव में तुझे नहीं आयी, हमें तूने नहीं जाना।

२७. आत्मा एकबार अंतर से उल्लसित हुआ, पश्चात् वहाँ मन शिथिल भी हो जाये तो वह उल्लास कम नहीं होता; इन्द्रियाँ शिथिल होने पर भी आत्मा में जो उल्लास आया है, वह कम नहीं होता। आत्मा समुद्र की भाँति जब मध्यबिंदु से उमड़ता है, तब उसे रोकने में जगत का कोई पदार्थ समर्थ नहीं है।

२८. सर्प के बच्चे को अपनी माता का ज्ञान है, इसलिये वह सर्प से नहीं डरता; सिंह के बच्चे को अपनी माता की पहिचान है, इसलिये वह सिंह से नहीं डरता; उसीप्रकार ज्ञान उसे कहते हैं जिससे निडरता और निर्भयता आये; वह कब आती है ?—कि जब शुद्धात्मा का सच्चा ज्ञान हो तब।

२९. भाई! तू स्वयं ही भगवान है, देहमंदिर में विराजमान परमात्मा है; भगवान, वही मैं और मैं, वही भगवान—ऐसी दृष्टि हुए बिना किसी को तीन काल-तीन लोक में सम्यग्दर्शन नहीं होता।

३०. एकरूप अभेद निर्विकल्पवस्तु, वह स्वद्रव्य है और उसमें गुण या पर्याय के भेद की कल्पना करना, वह भेदकल्पना परद्रव्य है। यह आत्मा और यह गुण—इसप्रकार अभेद वस्तु में भेद करना, वह परद्रव्य है। शरीर-मन-वाणी आदि परद्रव्यों की तो बात ही क्या, यहाँ तो ज्ञानादि अनंत गुण, वह आधेय और आत्मा उनका आधार—ऐसे आधेय-आधार के भेद करना, सो परद्रव्य है; इसलिये वह हेय है। परद्रव्य के लक्ष से तो राग होता है, परंतु अभेद वस्तु में भेद करके देखने से भी राग होता है... गजब की बात है न!... अंतिम से अंतिम ऊँचाई की बात है।

३१. यह आत्मा और यह गुण... यह आत्मा और यह पर्याय... ऐसे भेद का अभेद आत्मा में अभाव है। आत्मा में जो महिमा और महानता भरी है,

८७ वीं - जन्म जयंती

उसे भगवान घोषित करते हैं कि—अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत आनंद, अनंत प्रभुता आदि अनंत स्वभाव का एकरूप ऐसा जो स्वभावरूप स्वद्रव्य, वह निर्विकल्प वस्तुमात्र है। अनंतानंत स्वभाव से भरपूर भगवान अभेद एकरूप आत्मा ही स्वद्रव्य होने से उपादेयरूप है।

३२. जड़-इंद्रिय का लक्ष छोड़े, भाव-इंद्रिय का लक्ष छोड़े और इंद्रियों के विषय जो देव-गुरु आदि, उनका लक्ष छोड़े तथा त्रैकालिक स्वभाव का लक्ष करे तो उसने इंद्रियों को जीता कहते हैं। पर्याय से, निमित्त से और विषय से जो भिन्न वर्तता है, वैसे ज्ञान को मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

३३. जीव की दया पालने के भाव को लोग जैनसंस्कार मानते हैं, परंतु वे जैन के सच्चे संस्कार नहीं हैं; जैन के सच्चे संस्कार तो राग से भिन्न चैतन्य को मानता है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।'

३४. आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप ध्रुववस्तु है, उसे पर्याय पकड़ती है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनंदस्वरूप है—इतना विकल्प आता है, गुणभेद पड़ते हैं, इसलिये उन्हें इतना उपायरूप कहते हैं। प्रथम इतना विकल्प आये बिना नहीं रहता। समझे, पढ़े, विचार करे, उसमें ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव हूँ—इतना विकल्प आये बिना नहीं रहता। पर्याय ग्राहक है और वस्तु ग्राह्य है, इतना विकल्प पहले आता है; इसलिये विकल्प द्वारा निर्विकल्पता होती है—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, परंतु वास्तव में तो त्रिकाली आत्मा के लक्ष से निर्विकल्पता होती है।

३५. यदि तू अपने चैतन्यभाव का महत्त्व समझेगा तो पर का महत्त्व उड़ जायेगा, फिर भले ही इंद्र का इंद्रासन हो या चक्रवर्ती का राज्य हो, तथापि उनका महत्त्व तुझे भासित नहीं होगा।

३६. ज्ञान की वर्तमान अवस्था में परपदार्थों को भी जानने का उसका स्वभाव है, इसलिये परपदार्थों की अवस्था ज्ञान में ज्ञात हो, उतना ही मैं हूँ—ऐसी

अज्ञानी की मान्यता होने के कारण परपदार्थ नष्ट होने पर मैं भी नष्ट हो जाऊँगा—ऐसा वह मानता है।

३७. दर्पण की वर्तमान पर्याय में जल, कोयला, बर्फ, अग्नि आदि दिखाई देते हैं; वहाँ उस अवस्था जितना ही जो दर्पण को मानता है, वह अवस्था बदलने पर उसके बाद दर्पण ज्यों का त्यों मौजूद है, उसे नहीं मानता; उसीप्रकार एकसमय की पर्याय जितना ही आत्मा को माननेवाला अज्ञानी ज्ञेय बदलने पर ज्ञान की पर्याय बदल जाती है, वहाँ मैं नष्ट हो गया, ऐसा मानता है परंतु ज्ञानपर्याय नष्ट हो जाने पर भी ज्ञानस्वभावपिण्ड उसके पीछे ज्यों का त्यों विद्यमान है, उसे नहीं मानता।

३८. अभेद की दृष्टि कराने के प्रयोजन से, गुणभेद है, उसे भी परद्रव्य कहकर भेद की दृष्टि छुड़ाते हैं। भेद के लक्ष से राग होने के कारण उसका लक्ष छोड़ने से अभेद लक्ष में आ सकता है, उस हेतु से गुणभेद को परद्रव्य कहा जाता है।

३९. जैसे आकाश के तारे पानी में प्रतिबिम्बित होने से पानी देखने पर तारे भी दिखायी देते हैं। पानी में तारे नहीं हैं परंतु पानी की स्वच्छ पर्याय है। उसीप्रकार केवलज्ञान की पर्याय अपने को जानती है, वहाँ उस पर्याय में लोकालोक प्रतिबिम्बरूप से ज्ञात होते हैं; लोकालोक को जानने नहीं जाना पड़ता परंतु अपने को जानने पर वे ज्ञात हो जाते हैं।

४०. बारह अंग के ज्ञान को स्थूल ज्ञान कहा है कि जो ज्ञान लिखने से लिखा नहीं जा सकता, पढ़ने से पढ़ा नहीं जा सकता, सुनकर कहा नहीं जा सकता; तथापि उस ज्ञान को स्थूल कहा है। जो ज्ञान राग को भिन्न करके पर्याय को भगवान बनाता है, उस ज्ञान को भगवतीप्रज्ञा कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कहते हैं; उस भगवतीप्रज्ञा द्वारा भव का अंत आता है।

४१. एक समय की पर्याय, वह ग्राहक है और त्रिकाली वस्तु, वह ग्राह्य है। त्रिकाली वस्तु ध्रुव है, उसे एक समय की पर्याय ग्रहण करनेवाली

है—इतना भेद पड़ता है, वह विकल्प है, राग है। जो राग में रमे, वह आत्मा हरामी है और जो आत्मा में रमे, वह आत्माराम है।

४२. मक्खी जैसे प्राणी को भी फिटकरी और शक्कर का ज्ञान है। वह फिटकरी पर बैठे तो चिपक नहीं जाती और शक्कर पर बैठती है, तब उसकी मिठास में इसप्रकार चिपक जाती है कि पंख टूटने की भी परवाह नहीं करती। उसीप्रकार ज्ञानी को चैतन्यानंद की मिठास में इन्द्र, चक्रवर्ती के भोग भी सड़े हुए मुर्दे की भाँति दुर्गन्धित लगते हैं; इसलिये विषयों को फिटकरी की भाँति आकुलता का कारण जानकर उनमें नहीं चिपकते और अतीन्द्रिय आनंद को शक्कर का मीठा स्वाद मानकर उसमें से उखड़ते नहीं हैं।

४३. चेतनागुण का अनुभव करनेवाला ज्ञानी अन्य सब झगड़ों को छोड़ देता है। आत्मा रागरूप है, पुण्यरूप है, ज्ञानानंदरूप नहीं है; पर से लाभ होता है, व्यवहार से निश्चय होता है आदि विपरीत झगड़ों को छोड़ देनेवाला ज्ञानी चेतनागुण का अनुभव करता है। चेतनागुण के अनुभव से समस्त झगड़ों का—सब विपरीतताओं का नाश हो जाता है।

४४. लोग बाह्य चमत्कार को मानते हैं परंतु सच्चा चमत्कार तो चैतन्य का है। चैतन्य चमत्कार ऐसा है कि वह समस्त लोकलोक को अपने में ग्रस लेता है... अनंत सिद्ध हैं, उन्हें एक समय की ज्ञानपर्याय ग्रस ले (जान ले) ऐसे चमत्कारवाली है।

४५. कोई कहे कि शुभराग वह शुद्धता का साधन है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि अचेतनभाव वह साधन और चैतन्यभाव वह साध्य; दूसरे प्रकार से कहा जाये तो शुभराग, वह अजीव है; इसलिये अजीव वह साधन है और जीव वह साध्य; तीसरे प्रकार से कहें तो शुभराग वह दुःख है, इसलिये दुःखभाव साधन तथा सुखभाव वह साध्य; चौथे प्रकार से कहें तो शुभराग वह अस्वभावभाव है और उसके द्वारा शुद्धभावरूप स्वभाव

साध्य है;—इसप्रकार शुभराग को साधन मानने से अनेक प्रकार विपरीतता सिद्ध होती है।

[आज से ५० वर्ष पूर्व वर्धमानपुरी—वढवाणशहर में संवत् १९८२ में पूज्य गुरुदेव के जो प्रवचन हुए थे, उनमें से संक्षिप्त वचनामृत यहाँ दिये गया है।]

४६. चक्रवर्ती को अपनी विशाल संपत्ति छोड़ना सरल है और भिखारी को अपना एक भिक्षापात्र छोड़ना कठिन लगता है। आत्मस्वरूप को समझने के पश्चात् चक्रवर्ती की संपत्ति और भिक्षापात्र दोनों एक समान पुद्गल भासित होते हैं।

४७. दूसरों के कष्ट सुनकर कभी-कभी सुननेवालों के मुँह से अरे रे! निकल पड़ता है; परंतु वह अरे रे (वैराग्य) सच्चा नहीं है। जीव को दुःख अप्रिय है, इसलिये दुःख की बात सुनकर उदासीनभाव आ जाता है, परंतु इससे ऐसा नहीं समझना उसे संसार से सच्ची उदासीनता हो गई है। जब वह चक्रवर्ती की ऋद्धि का वर्णन सुनता है, तब उसे हर्ष भी होता है। यदि संसार से सच्ची विरक्ति हुई हो तो चक्रवर्ती को ऋद्धि या नारकी का दुःख—दोनों के वर्णन में उसे संसार के दुःख की ही प्रतीति होगी; दोनों के प्रति एक-सा उदासीनभाव ही आयेगा।

४८. अन्याय से उपार्जित लक्ष्मी भी बलात्कार से लायी गई स्त्री की भाँति अधिक समय नहीं टिकेगी। पति के गुणों से-प्रेम से आकर्षित स्त्री सदा उसके पास रहती है; उसीप्रकार न्याय से उपार्जित लक्ष्मी भी दीर्घ काल तक रहती है। नीति वह वस्त्रों के समान है और धर्म वह गहनों के समान है। वस्त्रों के बिना गहने शोभा नहीं देते, उसीप्रकार नीति के बिना धर्म शोभायमान नहीं होता।

४९. जो भी दुष्कर है—कठिन है, वह मंदवीर्यवान के लिये है, निर्बल के लिये है; बलवान के लिये कुछ भी दुष्कर या कठिन नहीं है।

५०. देवलोक में समस्त जीवों के असंख्यात शत्रु और मित्र हैं; तथापि जिनके साता का उदय हो, उन्हीं को वे मित्रदेव सहायता करने आते हैं और जिनके असाता का उदय हो, उन्हें वे शत्रुदेव विघ्न करने आते हैं; इसलिये पुण्य-पाप के उदय बिना उन देवों से भी किसी की सहायता या विघ्न करने की शक्ति नहीं है।

५१. घर संसार छोड़ने की दो रीतियाँ हैं—एक तो समझकर खड़े-खड़े घर से निकल जाना और दूसरे जब मर जाये, तब पड़े-पड़े घर से निकलना। यदि पड़कर घर छोड़ना ही पड़ेगा, ऐसा समझ ले तो खड़े-खड़े ही घर क्यों न छोड़ दिया जाये?

५२. सम्यग्दर्शन प्रगट होने से पूर्व योग्यता प्रगट होती है। पहले योग्यता प्रगट होती है, पश्चात् वस्तु प्रगट होती है;—ऐसा वस्तु का स्वभाव है। वस्तुस्वभाव प्रगट होना, वह भावनिक्षेप है और उस भावनिक्षेप के योग्य योग्यता प्रगट होना, वह द्रव्यनिक्षेप है। जहाँ यथार्थ द्रव्यनिक्षेप हो, वहाँ भावनिक्षेप होता ही है।

५३. ज्ञानी स्वभावलक्षण बतला रहे हों और सामनेवाला व्यक्ति उस लक्षण से लक्ष्य को समझ ले तो ज्ञानी और वह लक्ष्य समझनेवाला दोनों एकमत हो गये। वस्तुस्वभाव लक्ष होना ही योग्यता है।

५४. स्ववीर्य का ऐसा उल्लास प्रगट कर कि यथार्थ वस्तुस्वरूप की प्राप्ति हो जाये। आत्मा का स्वरूप प्रगट करने में एक समयमात्र का भी प्रमाद न कर। आहाहा! ऐसा अवसर बारंबार प्राप्त नहीं होता, इसलिये जल्दी आत्मप्राप्ति कर ले!

५५. ज्ञानी कहते हैं कि तूने बहुत क्या कर लिया? जब अपना सिद्धस्वरूप प्रगट हो, तब अपनी पूर्णता कही जाती है परंतु अधिकता तो नहीं कही जाती। अधिकता तो उसे कहा जायेगा कि वस्तु का जो स्वभाव है, उससे

भी कुछ विशेष बढ़ जाये... परंतु ऐसा तो होता नहीं है।

५६. बाहरी शत्रु को जीतने के लिये अनेक लोगों का आधार लेना पड़ता है परंतु आत्मा में तो कर्मशत्रु—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ राग-द्वेषादि हैं—उन्हें जीतने में अन्य किसी के आधार की आवश्यकता नहीं होती।

५७. अनंत काल से यह जीव कषाय के वेग में दौड़ रहा है, परंतु अभी तक उसे थकान नहीं लगती। यदि थकान लगे तो उसे घबराहट हो और घबराहट हो तो वह दूर हो सकती है।

५८. अनंत बार इस जीव ने छह-छह महीने के उपवास किये। खाल उतारकर नमक छिड़का, तथापि मन में क्रोध नहीं आया... अरे! फिर भी जिस निरालंबी भाव को समझना था, वह रह गया!

५९. अज्ञानी जीने के लक्ष से जी रहे हैं, इसलिये उन्हें मरण अच्छा नहीं लगता। मृत्यु आने पर भी उसको जीने का लक्ष बना रहता है। ज्ञानी तो मरने के लक्ष से ही जीते हैं; पहले से ही पूरी तैयारी होने के कारण वे मृत्यु को आनंद से स्वीकार कर लेते हैं; उन्हें मृत्यु का समय महोत्सव जैसा लगता है; इसलिये आनंदपूर्वक देह को छोड़ते हैं। जीने के भाव से तो अनंत बार जिया, परंतु मरने के भाव से कभी नहीं जिया; मरने के भाव से जिये तो पुनः जन्म न लेना पड़े।

६०. जिसे जहाँ प्रेम होता है, वहीं वह झुक जाता है; अर्पित हो जाता है। जिसे इस मनुष्यभव में आत्मा की लगन लगी है, उसे आत्मा प्रगट होकर ही रहेगा। जिसने आत्मा को जाना है, उसने आत्स्वभाव को सन्मुख किया है; उसे अन्य कुछ भी सन्मुख (मुख्य) नहीं हो सकता; उसे अब कोई चौदह ब्रह्माण्ड में विघ्न करनेवाला नहीं है। जिसने अपना आत्मजीवन प्रथम किया है, उसे अब तीनों काल में वह जीवन ही प्रथम (मुख्य) रहनेवाला है।

६१. जिसने अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव किया है, उसे बिना आहार के भी अलौकिक आनंद आता है; उसे शरीर और संसार को छोड़ना तो सरल बात है।

६२. पंचपरमेष्ठी के प्रेम की अपेक्षा यदि इस शरीर का प्रेम बढ़ जाये तो वह अनंतानुबंधी लोभ है।

६३. वीर्य का स्फुरण जितना दोषों की ओर जाये, वह बालतीर्य है, और जितना गुणों की ओर जाये, वह पंडितवीर्य है।

६४. कोई कहे कि यह पहले मोक्ष गये और यह बाद में मोक्ष गये:—ऐसा पहले और बाद का भंग वीतरागस्वभाव में नहीं है। आत्मा की प्रतीति होने के पश्चात् एक भव करे या कुछ अधिक भव करे, परंतु वीतराग स्वभाव में पहले और बाद में ऐसा भंग नहीं है। प्रथम-पश्चात् का भंग करना, वह तो विषमता है, कषाय है। चैतन्य को प्रथम-पश्चात् मोक्ष कहना, वह तो कटाक्ष करने के बराबर है।

६५. पाँच इंद्रियाँ और मन के द्वारा जो पर का जानना होता है, वह ज्ञान तो उधाररूप रहता है और उधार ज्ञान समय पर काम नहीं आता।

६६. अज्ञानी अपनी जानी हुई बात जब दूसरों से कहता है, तब उसे संतोष होता है। दूसरों से कहने का अवसर न मिले तो नहीं कहता; परंतु अंतर में कहने का अभिप्राय आये, तब उस अभिप्राय से उसे संतोष होता है। ज्ञानी को किसी से कहकर संतोष नहीं होता, परंतु अपने ज्ञानोपयोग से उसे संतोष होता है। वह ज्ञानी कदाचित् अज्ञानी की अपेक्षा बड़ा उपदेशक हो, तथापि उसे दूसरों को उपदेश देने से संतोष नहीं होता; किंतु उपदेश में अपने ज्ञान का जितना उपयोग रहे, उतना उसे संतोष होता है। इसलिये ज्ञानी बोलता हो, तथापि मौन है और अज्ञानी मौन हो, तथापि बोलता है।

६७. ज्ञानी कहते हैं कि 'फिर करेंगे, फिर करेंगे'—ऐसा वादा करने का अभ्यास जिसने कर रखा है, उसे मृत्युकाल में भी 'फिर' रहेगा; क्योंकि जिसने फिर... फिर का सिद्धांत अपना रखा है, उसे अभी करूँ-अभी करूँ नहीं आयेगा। और ज्ञानी को तो ऐसा लगता है कि यह शरीर छूटने के समय बहुत जोर लगेगा; तो उसमें जितना जोर लगेगा, उतना ही जोर उसके सामने आत्मा का होना चाहिये। इसलिये ज्ञानी को ऐसा लगता है कि अपने भाव को इसी क्षण तैयार करूँ, इसी पल तैयार करूँ। 'इसी पल तैयार करूँ'—ऐसा अभ्यास जिसने कर रखा है, उसे मृत्युकाल में वह जरूर काम आ जायेगा।

६८. देव-गुरु और धर्म की जो भावना है, उस भावना का कोई काल नहीं होता; क्योंकि परमात्मपद का जिसप्रकार काल नहीं होता, उसीप्रकार उसकी भावना का कोई काल नहीं होता। भावना भाते हुए ऐसा नहीं लगता कि में कई वर्ष से भावना भाता हूँ फिर भी काल क्यों नहीं दिखता? ऐसी आकुलता नहीं होती। आकुलता तो कषाय है, और जहाँ ऐसी आकुलता होती है, वहाँ आत्मभाव दूर होता जाता है। आकुलता अपनी भावना को कमजोर कर देती है तथा उसमें संदेह हो जाता है। वह अपनी सच्ची भावना को भी झूठा कर देती है। इसलिये भावना का काल नहीं होता। भावना वह भी वस्तुस्वरूप है, यदि तेरी सच्ची भावना होगी तो तेरा आत्मभाव तुझे प्राप्त होगा ही। जितना कारण दे, उतना कार्य अवश्य होता ही है।

६९. दृश्य पदार्थ का प्रेम और दशा का प्रेम नहीं, उसका नाम दर्शनमोह। स्वभाव में अभिप्राय का प्रेम छोड़कर परभाव में अभिप्राय का प्रेम, वह दर्शनमोह है।

७०. विपरीत परिणाम का कर्ता मैं हूँ—ऐसा एक भी निर्णय हो जाये तो दशा बढ़ती जाती है।

७१. भद्रता यानी कोई अपना छोटा-सा दोष बतलाये अथवा स्वयं देखे तो तुरंत स्वीकार करे। दूसरे का छोटा-सा गुण देखे तो उसको भी स्वीकार करे। अपनी बढ़ाई और दूसरे की हीनता करने में जिसप्रकार के विचार, वाणी और वर्तन होते हैं, वह भद्रता नहीं कहलाती; अपनी जो सीमा हो, उसके बाहर अपना बड़प्पन दिखाने में जो वर्तन होता है, वह वक्रता है।

७२. अपने में जो गुण न हों और दूसरा कोई वे गुण बतलाये कि—आप तो ऐसे गुणवान हो, तो ज्ञानी को ऐसा लगता है कि मुझमें यह गुण नहीं हैं और यह गुण बतला रहा है, यह तो दोषारोपण समान है। अज्ञानी को अपने में गुण न होने पर भी उसकी भावना ऐसी रहती है कि मुझे कोई गुणी माने तो ठीक... यह उसका अज्ञान है।

७३. एक अवगुण दूर हो तो उसकी जगह गुण प्रगट होना ही चाहिये; गुण प्रगट हो तो अवगुण दूर हुआ कहलाता है।

७४. जीव ने अपने सहज सुखस्वरूप के संबंध में एक क्षण भी धीर-गंभीर होकर विचार नहीं किया। यदि विचार करे तो वस्तु बहुत ही सस्ती और सरल है; परंतु तीव्र जिज्ञासा, उत्कंठा और लगन होना चाहिये। इस संसार का रस छूट जाये तो आत्मस्वरूप अवश्य प्रगट हो।

७५. सम्यग्दृष्टि ऐसा पाप नहीं करता कि परिभ्रमण हो; कदाचित् करे तो उससे छूटने की बागडोर भी अपने हाथ में रखी है; एकबार घर देख आया है।

७६. दूसरे के निमित्त बिना, स्वयं अपने से ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले (पूर्व संस्कारवाले) कोई विरले जीव ही होते हैं। सत्समागम के निमित्त से सम्यग्दर्शन हो, यह तो परंपरामार्ग है।

[संवत् १९९० में बोटाद में हुए प्रवचनों में से कुछ वचनामृत]

७७. सोने का कस कोयले पर नहीं आता, उसके लिये विशेष प्रकार की कसोटी पत्थर आता है; उसीप्रकार परमात्मपद की परीक्षा करनेवाला

पात्र भी विशेष प्रकार का होता है।

७८. अंतर्गत प्रमाण करके जिसने वस्तु को माना है, स्वीकार किया है, उसे इंद्र भी डिगाने आयें तो वह अपनी मान्यता से नहीं डिगता।

७९. संसार की कोई धुन लगी हो—गहरे विचार में डूबा हो और पास से बाजे बजते हुए निकल जायें तो उनका भी ख्याल नहीं रहता... तो आत्मा के लक्ष से सारे जगत को भूल जाये, उसमें आश्चर्य ही क्या!!

८०. आकुलतामय सुख में भी जब शरीर की व्याधि को भूल जाता है तो अनाकुलतामय सुख में जगत को क्यों नहीं भूलेगा? अर्थात् आत्मा के सच्चे सुख में संसार के चाहे जैसे घोर दुःखों का भी विस्मरण हो जाता है।

८१. जिस अज्ञानी को संसार में बहुत भटकना बाकी है, उसे ज्ञानी का आत्मा तो समझ में नहीं आता, परंतु उसके शरीर और हड्डियों (संहनन) का ज्ञान करना भी उसे कठिन है। (अर्थात् अज्ञानी को ज्ञानी के पुण्य और पुण्य के विपुल फल की बात बैठना कठिन है।)

८२. एक वस्तु के एक पक्ष का भी जिसे यथार्थ ज्ञान हो, उसे सभी पक्षों का ज्ञान यथार्थ हो जाता है। सम्यग्दर्शनसहित जो मति-श्रुतज्ञान है, वह केवलज्ञान का अंश है, केवलज्ञान का नमूना है, केवलज्ञान का टुकड़ा है।

८३. अज्ञानी को अज्ञान प्रमाणरूप न लगे तो सारा संसार ही उड़ जाये, उसे अज्ञान ही सत्यरूप लगता है।

८४. प्रतिदिन रोटी खाने पर अरुचि नहीं होती, उसीप्रकार ज्ञान का पुनः-पुनः कथन करने-सुनने में अरुचि नहीं होना चाहिये।

८५. आज्ञा दो प्रकार की है—द्रव्य-आज्ञा और भाव-आज्ञा। द्रव्य-आज्ञा माने तो पुण्यबंध होता है; भाव-आज्ञा को समझना बड़ा महँगा है। यदि एक समयमात्र भी भाव-आज्ञा को समझे तो भवभ्रमण दूर हो जाये।

८६. आत्मधर्म की रीति तो चक्रवर्ती तथा भिखारी दोनों के लिये समान होती

है। मरण और धरम की रीति तो सबको एक ही प्रकार की है।

८७. जगत का प्रेम कम हुए बिना परमेष्ठी के हृदय में क्या है।—उनका अंतरंग कैसा है?—वह समझ में नहीं आता। इसलिये परमेष्ठी का स्वरूप समझने के लिये जगत का प्रेम कम करना चाहिये। ●●

वांकानेर (सौराष्ट्र) में
पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की 'सम्यक्त्व-उपलब्धि' की
४४वीं जयंती

परम पूज्य गुरुदेव मंगल-विहार करते हुए दिनांक २५-३-७६ को वांकानेर नगर में पधारे। श्री वर्धमानस्वामी के शिखरबद्ध भव्य जिनालय से विभूषित वांकानेर नगर में पूज्य गुरुदेव का भवभीना स्वागत किया गया। सारा बाजार झंडियों-तोरणों से सजाया गया था। दो-दो बैण्डपार्टियों के सुमधुर स्वरों एवं महिला समाज के गीतों से स्वागतयात्रा की शोभा अनेक गुनी बढ़ गई थी। वांकानेर दिगम्बर जैनसंघ का आनंदोत्साह भी देखते ही बनता था।

पूज्य गुरुदेव आज मुमुक्षु समाज के समक्ष वांकानेर के दो विशेष स्मरणीय प्रसंगों का अनेक बार प्रसन्नता से उल्लेख करते थे—(१) वि. संवत् १९७७ में वांकानेर आये, तब सर्वप्रथम इस वांकानेर में ही मुझे पूर्वसंस्कार से ॐकार दिव्यध्वनि का नाद आया था... (२) चंपाबहिन को वि. संवत् १९८९ में चैत्र कृष्णा १० के दिन यहीं वांकानेर में सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ था, निर्विकल्प

अनुभूति हुई थी। आज भी चैत्र कृष्णा १०वीं है, योगानुयोग अच्छा अवसर आया है।

ऐसे दो-दो पावन प्रसंगों से पवित्र हुई वांकानेर नगरी में पूज्य बहिनश्री की सम्यक्त्व प्राप्ति की ४४वीं जयंती के मंगल दिन—चैत्र कृष्णा १० के दिन पूज्य गुरुदेव का मंगल आगमन होने से मुमुक्षु समाज में अपूर्व आनंदोल्लास छाया हुआ था। पवित्रात्मा पूज्य भगवती बहिनश्री चंपाबहिन की अंत:वासी कुमारिका ब्रह्मचारी बहिनें तथा अन्य अतिथि भी इस मंगल प्रसंग का लाभ लेने अच्छी संख्या में आये थे। इस उत्सव के उपलक्ष में तीन दिन तक श्री पंचपरमेष्ठी मंडल विधान पूजा का आयोजन किया गया था।

दसवीं के सुप्रभात में मुमुक्षु समाज के भाई-बहिन जिनमंदिर से बैण्डबाजों सहित सम्यक्त्व-बधाई के मंगलगीत गाते-गाते पूज्य बहिनश्री के दर्शन करने गये थे। वहाँ ४४ अंकों से अंकित ४४ मनोहर श्रीफलयुक्त मंगल कुंभ तथा ४४ ज्योतिर्मय दीपकों की कलामय कमान रची गई थी। पूज्य बहिनश्री की वैराग्यपूर्ण अलिप्त ज्ञानमुद्रा के पावन दर्शन से भक्तजन धन्यता का अनुभव कर रहे थे।

दोपहर के प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने, भावकभाव तथा ज्ञेयभाव के विवेक को प्राप्त तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप परिणत हुए, इस आत्मा को स्वात्मानुभूति किसप्रकार की होती है। उसका हृदयस्पर्शी विवेचन अति सरल भाषा में किया था।

प्रवचन के बाद श्री नवलचंद शाह ने पूज्य बहिनश्री के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए व्यक्तव्य दिया और पश्चात् वांकानेर दिगम्बर जैन संघ ने श्री चिमनलाल संघवी के शुभहस्त से स्वाध्यायमंदिर में पूज्य बहिनश्री के विशाल चित्र की अनावरण विधि हुई थी। संघवी परिवार की बहिनों ने पूज्य बहिनश्री को तिलक लगाकर, हार पहिनाकर उनका स्वागत किया था। पूज्य गुरुदेव की प्रसन्नता पूर्ण मंगल छाया में हुई यह विधि अति भव्य लगती थी।

दिव्य पुरुष ८७वीं जन्मजयंती

उपस्थित मुमुक्षु समाज जयनाद पूर्वक इस भव्य प्रसंग का अनुमोदन करता था।

सांयकाल पूज्य बहिनश्री, मकान मालिक के विनम्र आग्रह से 'साधनाभूमि' में—'सम्यक्त्वभूमि' में पधारी थीं। वहाँ—

❀ ❀ ❀

अंतर मंथन ने तीव्र लगनी थी
प्रखर पुरुषार्थे कहेता'ता भ्रातने
के छेटुं रह्युं छे लगार...
धन्य घड़ी आवी दसमीनी सुखकर...
अहो! मात उतर्या भवोदधि पार...

❀ ❀ ❀

आदि अनेक भक्तिगीतों से भक्तों ने भावभरी भक्ति की थी।

रात्रि को पूज्य गुरुदेव की तत्त्वचर्चा के पश्चात् पूज्य बहिनश्री के डेरे में-

'ज्ञान' बधाईना रे के सुर मधुर गाजे साहेलडी...
वांकानेर शहेरमां रे के चोघडियां वागे साहेलडी...

तथा

आवी आवी फाल्गुन दसमी आनंददायिनी हो बेन,
सुमंगलमालिनी हो बेन,
पाम्यां निजअनुभूति तेजदुलारी पावनी हो बेन,
परम कल्याणिनी हो बेन,

आदि मधुर भक्ति-गीतों से आज के मंगल उत्सव की पूर्णाहुति हुई थी।

इस मंगल उत्सव के हर्षोपलक्ष में मुमुक्षु भक्तों की ओर से ४४×५० की रकमें, तथा पूज्य बहिनश्री के चरणों में आयी फुटकर रकम आदि मिलकर ४०००) रुपये से अधिक श्री जिनमंदिर को भेंटस्वरूप अर्पित किये गये थे।

फाल्गुन कृष्णा १० से १३—४ दिन तक पूज्य गुरुदेव ने वांकानेर की जनता को अध्यात्मरस का पान कराया और फिर मोरवीशहर पधारे।

दिव्य-पुरुष 🙫 🙫 🙫

अध्यात्मयुगप्रवर्तक कानजीस्वामी

''वर्तमानकाल में अध्यात्मरस के रसिक जीव अति अल्प हैं; तथापि धन्य है उन्हें कि जो स्वानुभव की चर्चा भी करते हैं।''

(पण्डितप्रवर टोडरमलजी रहस्यपूर्ण चिट्ठी सं. १८११, फाल्गुन कृष्णा ५)

भौतिकवाद के कठिन काल में जबकि विज्ञान तीव्रगति से आगे बढ़ रहा है और जिसमें सर्वत्र प्राय: सर्व जगत विज्ञान तथा अज्ञान से पीड़ित हो रहा है, तब इस कलिकाल में भी खारे समुद्र में मीठे पानी के कूप समान... जिन्होंने विश्ववंद्य भगवान श्री महावीर शासन के वीतरागी मार्ग के छह द्रव्य, सात तत्त्व, देव-गुरु-धर्म, द्रव्य-गुण-पर्याय, स्याद्वाद-अनेकांत, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, अकर्तावाद-क्रमबद्धपर्याय आदि गूढ़तम मौलिक सिद्धांतों के रहस्य का सरल सुबोध शैली में आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा उद्घाटन किया है; इतना ही नहीं परंतु अनादिनिधन जिनप्रवचन-जीवंत तीर्थश्रुत परंपरा को देश-देश में, नगर-नगर में, ग्राम-ग्राम में, गली-गली में, घर-घर में संप्रदाय और जातिभेद भुलाकर आबाल-गोपाल के लिये देशभाषा में साहित्य प्रकाशन द्वारा तथा प्रौढ़ और विद्यार्थी शिक्षण-शिविरों द्वारा श्रुतगंगा प्रवाहित करके भारत के आध्यात्मिक धरातल को पुन: आध्यात्मिक वातावरण से नवसिंचित करके—नव सर्जित करके जीवंत तथा रसाल बनाकर वसुंधरा नाम को सार्थक किया है। जिसके फलस्वरूप भव्यजीवों में शुद्धात्मा समझने की, जानने की, अनुभवने की जिज्ञासा-रुचि-भूख सर्वत्र जागृत हुई है और एक नये आध्यात्मिक युग का प्रारंभ हुआ है, मंगल सुप्रभात का सूर्योदय हुआ है, तथा अध्यात्म का ज्वार आया है।

तीन भुवन में वीतराग विज्ञानता ही सार है, और भगवान आत्मा सदा

८७वीं-जन्मजयंती

त्रिकाल वीतराग विज्ञानघनस्वरूप मंगल है, अनन्य शरणभूत है—ऐसा जयघोष जिनके प्रसाद से गुँजित हुआ है तथा सर्व जीवों के मानसपटल पर अमिटरूप से अंकित हो गया है। विशेषत: इस महारथी सारथी ने सारे जगत को एकमात्र ध्रुव के ध्येय की बारात में—अध्यात्मविद्या के रथ में जोता है।

व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं वाणी स्वातंत्र्य की प्राप्ति के लिये भौतिक दुनिया जब तड़प रही है, परोन्मुखी होकर आकुल-व्याकुल हो रही है, भीख माँग रही है, तब भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित सिद्धांतों द्वारा विश्व में छह द्रव्य हैं, जड़ और चेतन, आत्मा और परमाणु—सब अनादिनिधन स्वतंत्र हैं, अपने-अपने स्वभाव से सब परिपूर्ण हैं। 'स्व-रूप से हैं और पर-रूप से नहीं हैं'—ऐसा अनेकांतिक स्वभाव से द्रव्यों की स्वतंत्रता का उद्घोष करके ढंढेरा पीटकर निर्भिकतापूर्वक घोषित किया है कि—द्रव्य सत्, गुण सत् और प्रत्येक पर्याय भी सत्; भले ही वह विकारी हो या अविकारी हो—स्वतंत्र, अहेतुक एवं स्वयंसिद्ध है; तथा प्रत्येक आत्मा तीनों काल स्वभाव से सुखस्वरूप है—ऐसा सिंहनाद करके चिरकाल से मोहनिद्रा में पड़े हुए जीवों को वीरसंजीवनी बूटी द्वारा जागृत करके चैतन्य चमत्कारस्वरूप अचिंत्य महापदार्थ निज-शुद्धात्मा में चमत्कृत किया है।

'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी भला-बुरा नहीं कर सकता तथा राग में धर्म नहीं है, जैनधर्म तो एक वीतरागभाव है'—ऐसी जिनमार्ग की महत्त्वपूर्ण 'रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क' सिद्धांतों की बुलंद उद्घोषणा और 'राग तथा ज्ञान दोनों त्रिकाल भिन्न हैं'—ऐसी भेदज्ञान की सतत बजती वीणा के नाद से अनेक भव्य जीवों को गृहीत मिथ्यात्व की नागपाश में से अज्ञान, पाखंड और ढोंग के पोपडम की पाशवी लीला से उबार लिया है तथा आत्मानुभव का अमृतपान करने की प्रेरणा दी है; तथा जिनके द्वारा अंतर्बाह्य निश्चय-व्यवहार तीर्थों की सुस्थापना—सुरक्षा एवं वृद्धि हो रही है।

न्याय, तर्क, युक्ति, आगमपरंपरा, गुरुपरंपरा एवं स्वानुभव के प्रमाण

की कसौटी पर स्वयं शुद्धात्मा को—द्रव्य-भावसमयसार को उन पारखी ने परख लिया है तथा उसमें विशेष मग्नता होना, यही जिनका जीवन और व्यवसाय हो गया है; तथा जिनका शेष चैतन्यजीवन जीवनपर्यंत अंतर्बाह्य वैभवों द्वारा समस्त जगत को 'रे आत्म, तारो आत्म तारो शीघ्र ऐने ओळखो' में समर्पित हुआ है। जो भारत के मुमुक्षु समाज के लिये अनमोल भेंट समान है। ऐसे महान उपकारी अध्यात्मयुगप्रवर्तक, जिनमार्गप्रवचन रहस्योद्घाटक, आत्मज्ञ संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को शत-शत वंदन, शत-शत अभिनंदन!

—बाबूभाई चुनीलाल महेता, फतेपुर

—: सूचना :—

अत्यंत धर्मोल्लासपूर्वक निवेदन है कि दादर-बम्बई नगर में महावीरनगर, पारसी जीमखाना, दादर (पूर्व-मध्य रेलवे) में श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का प्रथम वर्षीय प्रथम जनरल अधिवेशन दिनांक वैशाख शुक्ला १, शुक्रवार ३०-४-७६, दोपहर ४-१५ बजे आत्मज्ञसंत पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगलवर्धिनी छत्रछाया में विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी की अध्यक्षता में दिगंबर समाज के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन द्वारा उद्घाटित होगा। अत: उस मंगल सुअवसर पर पधारकर जिनेन्द्रशासन की, जीवंत तीर्थों की सुप्रभावना में अभिवृद्धि करें।

भवदीय—

बाबूभाई चुन्नीलाल महेता, अध्यक्ष
धन्यकुमार बेलोकर, महामंत्री
श्री कुन्दकुन्द-कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

साधनाधाम में पूज्य भगवती बहिनश्री चंपाबहिन के श्रीमुख से प्रवाहित

अध्यात्म-अमृत का प्रसाद

[वांकानेर, चैत्र कृष्णा १० संवत् २०३२]

'बहिन! सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये मुमुक्षु को क्या करना चाहिये, इस संबंध में कुछ कहिये!'—इसप्रकार किसी मुमुक्षुभाई की ओर से प्रार्थना किये जाने पर, 'पूज्य गुरुदेव बहुत कहते हैं; सम्यग्दर्शन के संबंध में, उसके पुरुषार्थ के विषय में, ज्ञायकतत्त्व के विषय में अत्यंत स्पष्ट समझाते हैं; मैं क्या कहूँ?'—इसप्रकार पहले तो पूज्य बहिनश्री कोमलता से बोलीं; फिर कुछ रुकने के पश्चात् निम्नोक्त उद्गार निकले:—

भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिये... ज्ञायक आत्मा को पहिचानना चाहिये... 'मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ'... आत्मा को सबसे भिन्न—परद्रव्य से, परभाव से भिन्न जानना... भिन्न ही है।

अनादिकाल से स्वयं अपना स्वरूप छोड़ा नहीं है; परंतु भ्रांति के कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा भासित हुआ है। अनादिकाल से द्रव्य तो शुद्धता से भरपूर है, ज्ञायकस्वरूप ही है, आनंदस्वरूप ही है। उसमें अनंत चमत्कारिक शक्ति भरी है।

'ज्ञायकस्वरूप हूँ'—ऐसा अभ्यास और प्रतीति करना चाहिये; प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर, जो अनंत चमत्कारिक शक्ति विद्यमान है, वह प्रगट अनुभव में आती है।

प्रश्नः—मुमुक्षु जीव को प्रथम क्या करना ?

उत्तरः—प्रथम द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जाने। चैतन्यद्रव्य के सामान्य स्वभाव को जानकर, उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये तो उसमें विभूति है, वह प्रगट होती है। चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे तो प्रतीति होती है; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।

सर्वप्रथम चैतन्य को जानना, चैतन्य में ही विश्वास करना और फिर चैतन्य में ही स्थिर होना... तब चैतन्य प्रगट होता है, उसकी शक्ति प्रगट होती है।

प्रगट करने में अपनी तैयारी-उग्र पुरुषार्थ बारंबार करे, ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मंथन, उसी का चिंतवन करे तो प्रगट होता है।

पूज्य गुरुदेव ने मार्ग बतलाया है; चारों ओर से स्पष्ट किया है।

प्रश्नः—आत्मा की विभूति को उपमा देकर समझाइये।

उत्तरः—चैतन्यतत्त्व में विभूति भरी है; उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। चैतन्य में जो विभूति भरी है, वह अनुभव में आती है; उपमा क्या दी जाये ?

प्रश्नः—आत्मानुभव होने से पूर्व का अंतिम विकल्प कैसा होता है ?

उत्तर:—अंतिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है। जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही हो, वहाँ कौन सा विकल्प अंतिम होगा (अर्थात् अंत में अमुक ही विकल्प होगा) ऐसा 'विकल्प' संबंधी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधारा की उग्रता-क्षीणता हो, वहाँ 'विकल्प कौन सा?' उसका संबंध नहीं है।

भेदज्ञान की उग्रता, उसकी लगन, उसी की तीव्रता होना चाहिये... शब्दों से वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करे... गहराई में उतरे... उसके तल में जाकर देखे... तल में जाकर स्थिर हो... तब प्राप्ति होती है—ज्ञायक प्रगट होता है।

प्रश्न:—निर्विकल्पदशा होने पर किसका वेदन होता है?—द्रव्य का या पर्याय का?

उत्तर:—दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है; वेदन होता है आनंदादि पर्यायों का।

स्वभाव से द्रव्य तो अनादि-अनंत है, जो पलटता या बदलता नहीं है; उस पर दृष्टि करने से, उसका ध्यान करने से, अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है।

प्रश्न:—निर्विकल्प अनुभूति के समय कैसा आनंद होता है?

उत्तर:—उस आनंद की किसी जगत के—विभाव के—आनंद के साथ समानता नहीं है। जिसे अनुभव में आता है, वह जानता है। उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। ऐसी अचिंत्य अद्‌भुत है उसकी महिमा!

पूज्य गुरुदेव के प्रति अत्यंत अर्पणतापूर्वक
पूज्यबहिनश्री-बहिन की भावभीनी भक्ति

गुरु-महिमा

श्री सद्गुरुजी महिमा अपार के, हुं शुं कथी शकुं रे लोल।
तेमना गुण छे अपरंपार के, अचिंत्य आत्मा झलकी रह्यी रे लोल॥

अद्भुत ज्ञान खजानो अपार के, चरणादिक शोभी रह्या रे लोल।
खीलेल आतमशक्ति अपार के, चैतन्य तेज दीषी रह्युं रे लोल॥

समयसार-आदिमांथी काढेल मावो के, खवडाव्यो खंतथी रे लोल।
पींखी पींखी अने समझाव्युं, रहस्य हृदयनुं रे लोल॥

असली स्वरूपनुं आप्युं ज्ञान के, न्याल सेवक ने कर्यो रे लोल।
आवो पुरुष आ काले अजोड के, दुर्लभता सत् तणी रे लोल॥

प्रभु नो 'तां केवली संतना जोग के, एकाकी सत् शोधीयुं रे लोल।
प्रभु मत मतांतरना मोटा भेद के, वच्चेथी सार काढीयो रे लोल॥

सुरलो के इंद्रो गाय छे गीत के, भरतना आ भूषना रे लोल।
भरतमां वर्ती रह्यी छे जयकार के, महिमा कहानगुरु तणो रे लोल॥

प्रभु पामरने कर्यो उपकार अमाप के, अमृत रेडीयां रे लोल।
आ शरीरनी शीवडावुं खोळ के, बदलो नवी बळे रे लोल।

झाझुं शुं कहीए कृपानाथ के, दास हुं आपनो रे लाल।
प्रभु अति अति दीजिये आत्मतणो लाभ के, कृपा वरसावीने रे लोल॥

साक्षात् सुरमणी सुरतरु नाथ के, फलीओ सत्गुरु रे लोल।
कई विध पूजुं कई विध वंदु नाश के, गुरु महिमा अपार छे रे लोल॥

मुमुक्षुओं का मंगल पर्व

गुरु जन्म-जयन्ती

गुर्जर प्रदेश के कानम प्रदेश में स्थित पालेज ग्राम में एक सत्रह वर्षीय वणिक कुमार, दुकान के लिये माल क्रया करके और रामलीला देखकर चला आ रहा है। रामलीला का दृश्य देखकर उसके हृदय में वैराग्य की मस्ती चढ़ गई है। साक्षरत्व या कवित्व न होने पर भी वैराग्य की धुन में छह पदों के एक काव्य की रचना हो जाती है। काव्य की प्रथम पंक्ति थी—

'शिवरमणी रमनार तुं, तुंही देवनो देव'

सहज ही रची गई उन पंक्तियों में पूर्व संस्कारों के सूचक कोई गहन संकेत थे। उनमें शिवरमणी को—पूर्ण परमानंदमय मोक्षपरिणति को—वरण करने की उत्तम भावना थी। उस मंगलमय परिणति का वरण करने को शक्तिमान देवाधिदेव मैं स्वयं ही हूँ—ऐसी दृढ़ता की अव्यक्त स्फुरणा थी।

वह तरुण वणिककुमार थे आगे चलकर हजारों जीवों को अध्यात्म का मार्ग दर्शानवाले हमारे परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी।

निकट पूर्वभव में देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान का साक्षात् समागम करके आये थे और निकट भविष्य में स्वयं भी 'देवाधिदेव' पद को प्राप्त होना था, इसलिये उन्हें शतेन्द्रवंद्य, मुक्तिरमा को वरनेवाले देवाधिदेव पद की भनक बचपन से ही आती थी।

वैराग्यप्रेम के कारण व्यापार में मन नहीं लगा; त्यागमय जीवन स्वीकार किया। स्थानकवासी साधु जीवन में त्याग के आदर्श के साथ सम्प्रदाय के आगमों का खूब अध्ययन किया... परंतु उस अध्यात्मविद्याशून्य आगमाभ्यास से संतोष नहीं हुआ... उनका अंतरात्मा आध्यात्मिक सत्य की खोज के लिये

तड़पता था... आत्मानुभव शून्य सांप्रदायिक रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था।

कई बार उन्हें अंतर में भास होता कि—'मैं राजकुमार हूँ।' इकहरा ऊँचा शरीर, जरी के वस्त्रादि का स्मरण होता था; कभी अंतर से भनक आती कि 'मैं तीर्थंकर हूँ', कभी ॐकारध्वनि गूँजती; संवत् १९७८, ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी के दिन उत्तराध्ययन के मृगापुत्र के अध्ययन की स्वाध्याय करके जरा लेटे तो ॐकार ध्वनि का नाद और साढ़े बारह करोड़ बाजों की ध्वनि का स्मरण हुआ। यह सब क्या है ? उसका स्पष्ट हल नहीं मिलता था।

वि. संवत् १९७८ में श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का समयसार परमागम पढ़ने को मिला। कुशल जौहरी की भाँति अध्यात्मप्रभामंडित परम रत्न की तुरंत ही परीक्षा कर ली। समयसार के अंतर्मुखी अध्ययन से उनकी दिशा बदल गयी। त्रैकालिक निज शुद्धात्मतत्त्व के सिवा अन्य धार्मिक अनुष्ठान मात्र पुण्यबंध का हेतु है, आत्मप्राप्ति के लिये निरर्थक है; और भवसंततिछेदक आत्मोपलब्धि के लिये अखंड ज्ञानानंदघनरूप शुद्धात्मद्रव्य सामान्य ही एकमात्र शरण है—ऐसा स्पष्ट प्रतिभासित होने लगा। व्याख्यान में जड़ क्रियाकांड को सयुक्ति निरर्थक दर्शाकर अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता का जोर आने लगा... और उससे हजारों बुद्धिजीवी श्रोताओं के श्रद्धास्पद बन गये। संप्रदाय में अध्यात्मवक्ता के रूप में 'काठियावाड़ के कोहिनूर' नाम से उनकी कीर्ति दिगंत में फैल गई।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव के परमागमों के उपरांत अन्य दिगंबर आचार्यों के अनेक शास्त्रों का गहन अवगाहन किया। संप्रदाय की रूढ़िगत प्रणाली से सनातन सत्य वीतरागमार्ग भिन्न ही भासित हुआ; वाड़े में रहकर सत्यमार्ग का प्रकाशन असंभव लगा। दीर्घ सुविचार एवं गहरे मनोमंथन के परिणामस्वरूप सोनगढ़ में वि. सं. १९९१ में महावीर जयंती के मंगल दिन संप्रदाय के चिह्न का त्याग करके क्रांतिमय परिवर्तन किया।

सोनगढ़ साधना-भूमि बना। परिचित अध्यात्मपिपासुओं का वृंद

सोनगढ़ आने को आकर्षित हुआ।

वि. सं. १९९३ में पूज्य गुरुदेव के मंगल प्रभावना उदय को असाधारण बल प्रेरित करनेवाली एक अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण घटना हुई। परमोपकारी गुरुदेव की सर्वोत्तम भक्त आत्मज्ञविभूति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन को, शुद्धात्मानुभूति में से उपयोग बाहर आने पर, पूर्वभवों का सहज स्मरण हुआ। कई महीने तक गंभीरता पूर्वक गुप्तता रखकर पश्चात् पूज्य बहिनश्री ने—पूज्य गुरुदेव का जीव गत पूर्वभव में जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में राजकुमार था, शरीर इकहरा ऊँचा था, बहुमूल्य जरी के वस्त्र पहिनते थे। बहिनश्री चंपाबतिहन का जीव (–गत पूर्वभव में देवराज नामक श्रेष्ठी–पुत्र) और राजकुमार आदि चार जीव मित्र थे। वे श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में दिव्यध्वनि सुनने के लिये साथ आते थे। भरतक्षेत्र के भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्र में श्री सीमंधर भगवान की सभा में पधारे और वहाँ आठ दिन रहे, उस समय राजकुमार तथा श्रेष्ठी–पुत्र आदि की वहाँ उपस्थिति थी... और 'यह राजकुमार भविष्य में धातकी खंड में सूर्यकीर्ति नाम के तीर्थंकर होंगे'—यह बात भगवान की दिव्यध्वनि में प्रत्यक्ष सुनी थी... आदि—जातिस्मरण में आया—वास्तविक बातें पूज्य गुरुदेव के समक्ष, पूज्य गुरुदेव की जानकारी के लिये, गौप्यभाव से प्रगट की।

पूर्वभव की वह बात सुनते ही गुरुदेव को उनकी तथ्यता हृदयगत हो गयी... और कहा कि—''बहिन, यह हकीकत सत्य है; मुझे भी कई बार ऐसा भास होता था; परंतु उसका स्पष्ट हल नहीं मिलता था। 'में तीर्थंकर हूँ' ऐसा अंतर में भासित होता था परंतु उसका अर्थ अब समझ में आया कि 'मैं तीर्थंकर का जीव हूँ।' तुम्हारे निर्मल जातिस्मरण ज्ञान से उस आभास का सब भेद आज स्पष्ट हुआ है; यह बात 'ऐसी ही है' उसकी सचोट प्रतीति हुई है और अंत:परिणति को बल मिला है।''

पूर्वभव में देवाधिदेव श्री सीमंधर प्रभु के समवसरण के सभासद एवं

दिव्य-पुरुष ८७वीं जन्मजयंती

भविष्य के भव में स्वयं देवाधिदेव तीर्थंकर होकर शिवरमणी का वरण करनेवाले इन गुरुदेव का कल्याणकारी समागम इस काल में हम सबको प्राप्त हुआ है, वह हमारा महान अहो-भाग्य है। पुराण ग्रंथों में तीर्थंकर जीव के पूर्वभवों में उनके समीपवर्ती अनेक जीवों के रोचक वृत्तांत लिखे गये हैं, परंतु यहाँ तो भावी तीर्थंकर के पूर्वभव में उनके साक्षात् अंतःवासी बनकर आत्मसाधना का अद्भुत योग संप्राप्त हुआ है, वह सबमुच हमारा महान सद्भाग्य है।

जिन्होंने आचार्यदेव श्री कुन्दकुन्द प्रभु के अध्यात्ममार्ग का पुनरुद्योत करके वीतराग जिनशासन को सचमुच चमकाया है, जिन्होंने स्वयं अनुभूत शुद्धात्मदृष्टि का सम्यक् मार्ग हमें दिया है, परमपारिणामिकभावस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव निज शुद्धात्मद्रव्य के पवित्र आलंबन का अमोघ मंत्र देकर जिन्होंने अपना उद्धार किया है और इसप्रकार हमें लोकोत्तर वीतरागी मार्ग का अनुगामी बनाया है—ऐसे परम कृपालु गुरुदेव का हम पर असाधारण महान उपकार वर्तता है। उनके बतलाये हुए अध्यात्ममार्ग में गमन किये बिना उन अकारण महान उपकारी का ऋण नहीं चुकाया जा सकता।

अंत में, अध्यात्मतीर्थप्रद्योतक ऐसे परमोपकारी महापुरुष की ८७वीं मंगल जन्मजयंती के शुभ अवसर पर, उनके अनंत-अनंत उपकारों को आत्मसात् करके, पंचकल्याणकों से विभूषित उनकी मुक्तियात्रा में हम अवश्य साथ रहें, ऐसी पवित्रतम भावना के साथ अत्यंत भक्तिभाव से श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

—ब्र. चन्दुलाल खीमचंद झोबालिया

अध्यात्मयुगप्रवर्तक, निर्ग्रंथ वीतरागमार्ग के परम उपासक,
जिनेन्द्रशासन के ज्योतिर्धर परम पूज्य गुरुदेव
श्री कानजीस्वामी के प्रति सादर समर्पित

दिव्य-पुरुष

८७ वीं - जन्म जयंती

श्रद्धांजलि

द्रव्य-अपेक्षा से जिनका आत्मजीवन अनादि-अनंत है, भाव-अपेक्षा से परिपूर्ण शुद्धात्मजीवन द्वारा जो अल्पकाल में सादि-अनंत अजन्मदशा प्राप्त करनेवाले हैं, ऐसे अभिनंदनीय-अभिवंदनीय भारत की भव्य विभूति, महान धर्म-क्रांतिकार, परमोपकारी पूज्य गुरुदेव के पावन चरणकमल में उनकी ८७वीं जन्म-जयंती के अवसर पर अत्यंत भक्तिभाव से तथा आत्मोल्लासपूर्वक श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

क्योंकि

उन्होंने परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशील ज्ञायकस्वभाव का अपूर्व माहात्म्य समझाया है, भव्य जीवों को सिद्धिसदन के प्रति ले जानेवाले मोक्षमार्ग का यथार्थ विधान किया है, वीतरागी मार्ग के विमल पंथ में विचरने की प्रबल प्रेरणा दी है, भवाटवी में भटकते हुए प्राणियों को मुक्तिनगर में सुरक्षित पहुँचाने के लिये अध्यात्मामर्गदर्शक के रूप में कार्यवाही की है, अपूर्व आत्मशुद्धि का पावन संदेश अनुभवपूर्ण अमोघ आत्मस्पर्शी वाणी द्वारा दिया है, अनुपम स्वरूपसंपदा द्वारा सहजानंद परिणति का तादृश चित्रण अध्यात्मरसिक जनता के समक्ष उपस्थित किया है, आत्मसमृद्धि में से चैतन्य के सुवर्णनिधान खोल दिये हैं, शुद्ध अंतर में से झरते हुए उपशमरस के अमृतबिन्दुओं द्वारा संसार के त्रिविध तापों का शमन किया है, जीवन पथ को ज्योतिर्मय बनाने के लिये अध्यात्मज्ञानदीपक जलाये हैं, भोगमार्ग का त्याग करके मुक्तिसाधक महायोग का अद्वितीय अवलंबन लिया है, आत्मभ्रांतिरूप महारोग का क्षय करने के लिये सम्यक्त्वसुधा का पान कराया है,

परमपारिणामिकभाव को ध्रुवतारा बनाकर मोक्षनगरी में पहुँचने की यात्रा प्रारंभ की है और अध्यात्म श्रुतसागर में से अनेक बहुमूल्य अलौकिक सिद्धांत-मौक्तिक एकत्र करके जगत के समक्ष प्रदर्शित किये हैं।

उपरोक्त समस्त कार्यों द्वारा जिन्होंने जगत पर महान उपकार किया है उनका यथाशक्ति स्मरण करते हुए हम अत्यानंद का अनुभव करते हैं और अंतर की भावभीनी ऊर्मियों से आपका स्वागत करते हैं तथा आप शतायु होकर हम सबका जीवनपथ सदा प्रकाशित करते रहें—ऐसी विनम्रभाव से प्रार्थना करते हैं।

आपकी जयंती वह अमर सिद्धांतों के पुनर्जीवन की जयंती है। आपका जीवन अर्थात् सत् का नवनिर्माण, आपकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि की प्रतिध्वनि, भव का अभाव करने की उत्तम कला और जड़-चेतन की अत्यंत भिन्नता का स्वतंत्र प्रदर्शन है। इसलिये अन्त्याब्द में आपके अनुभव में आये हुए अतीन्द्रिय आत्मानंद से अधिक आत्मानंद का आप आगताब्दों में अनुभव करें—ऐसी आंतरिक अभिलाषा और अभ्यर्थना। —***खीमचंद जेठालाल सेठ***

तीर्थंकर के साथ

जैन पुराणों में जब हम किन्हीं तीर्थंकर प्रभु के पूर्वभवों का वर्णन पढ़ते हैं और उन पूर्वभवों में उनके साथ रहनेवाले अन्य सुभागी जीवों का वृत्तांत पढ़ते हैं, तब हमें कैसी प्रसन्नता होती है!—वह तो पुराणों के अभ्यासी जानते हैं। हमें भी ऐसे महत्पुरुष की प्राप्ति हुई है जिनके जीवन में उपरोक्त बातें बराबर लागू होती हैं। गुरुदेव के ही श्रीमुख से अनेकबार आनंदकारी उद्‌गार सुने हैं कि—'मेरा यह भव तीर्थंकर प्रकृति का बंध होने से पूर्व का भव है' अर्थात्

'अब अगले मनुष्यभव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होगा।' साक्षात् तीर्थंकर भगवान के समवसरण में पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन ने यह बात सुनी है।

अहा, एक तीर्थंकर के पूर्वभव में उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होना, यह कितने महान हर्ष की बात है! वह तो हम सब जानते हैं। तदुपरांत, गुरुदेव जो सर्वोत्कृष्ट सुंदर आत्मतत्त्व का स्वरूप समझाते हैं, वह स्वरूप समझने से जो आनंद होता है और भव के अंत की भनक आती है—उसका क्या कहना!! गुरुदेव बारंबार कहते हैं कि—जो सर्वज्ञदेव के कहे हुए इस वस्तुस्वरूप को समझेगा वह कृतकृत्य हो जायेगा।

पंचमकाल में भी भव अंत का वचन देनेवाले ऐसे गुरु हमें इस काल में प्राप्त हुए, वह हमारी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। उनका वर्तमान जीवन देखो तो चैतन्यभगवान की भनक से भरा हुआ, उनका भावी जीवन देखो तो भगवानस्वरूप, और उनका भूतकालीन जीवन देखो तो भगवान से संबंधित। यदि हम अपने ज्ञान को मात्र चार भव तक लंबाकर देख सकें तो हमें गुरुदेव के बदले एक साक्षात् 'सूर्य' समान तेजस्वी तीर्थंकर के दर्शन होते हैं; अथवा द्रव्यनिक्षेप के बल से भविष्य एवं वर्तमानरूप से देख सकें तब भी एक भगवान के ही दर्शन होते हैं। अहा, ज्ञानभगवान, सुखभगवान, वीर्यभगवान ऐसे अनंत भगवानपने से भरे हुए चैतन्यभगवान के दर्शन करानेवाले 'भगवान' इस पंचम काल में भी प्राप्त हैं... और उनका मंगल जन्मोत्सव आज उनके सान्निध्य में हम मना रहे हैं—यह कितना कल्याणकारी अवसर है! उसे मनाने के लिये क्या करना? गुरुदेव हमें हमेशा बतलाते हैं कि राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व की प्रीति करके जो उसकी बात भी सुनेगा, वह भव्य जीव भविष्य में अवश्य सिद्धपद को प्राप्त करेगा। प्रभो! आपकी सर्वज्ञता को और आपके अतीन्द्रिय महा आनंद को जब हम अपने ज्ञान में याद करते हैं, तब हमारे आत्मा में से जड़ता दूर हो जाती है और चैतन्यप्रभु जागृत हो उठता है।

जिन गुरुदेव के प्रताप से हमें जैनधर्म की तथा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र

की प्राप्ति हुई है, जो मुमुक्षु के आधार हैं, जिनके शासन में पवित्र बहिनश्री जैसे धर्मरत्न उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने भव्यजीवों को सच्चा मोक्षपथ बतलाया है, जिन्होंने पंच परमेष्ठी के, छह द्रव्य के, सात तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप की पहिचान करायी है—ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेव के चरणों में भक्ति भीने चित्त से कोटि-कोटि वंदन!

—*ब्रह्मचारी हरिलाल जैन*

पूज्य स्वामीजी द्वारा सोनगढ़ में सभा में हुए

शास्त्र-प्रवचन

१. श्री समयसार
२. '' प्रवचनसार
३. '' पंचास्तिकाय
४. '' अष्टपाहुड़
५. '' परमात्मप्रकाश
६. '' नियमसार
७. '' षट्खंडागम, भाग-१
८. '' कार्तिकेय अनुप्रेक्षा
९. '' पद्मनंदि-पंचविंशतिका
१०. '' समाधि-शतक
११. '' तत्त्वार्थसार
१२. '' आत्मानुशासन
१३. '' वृहत्-द्रव्य संग्रह
१४. '' योगसार (अमितगति आचार्य)
१५. '' इष्टोपदेश
१६. '' समयसार नाटक
१७. '' मोक्षमार्गप्रकाशक
१८. श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी
१९. '' सम्यग्ज्ञान दीपिका
२०. '' अनुभव-प्रकाश
२१. '' भक्तामर स्तोत्र
२२. '' योगसार (योगीन्द्रदेव)
२३. '' छहढाला
२४. '' समयसार कलश टीका
२५. '' आत्मसिद्धि (श्रीमद् राजचन्द्र)
२६. '' पुरुषार्थसिद्धियुपाय
२७. '' उपादान-निमित्त के दोहे
२८. '' रहस्यपूर्ण चिट्ठी (पंडित टोडरमलजी)
२९. '' उपादान-निमित्त की चिट्ठी (पंडित बनारसीदास)
३०. श्री परमार्थ वचनिका (पंडित बनारसीदास)
३१. '' द्वादशानुप्रेक्षा
३२. '' विषापहार स्तोत्र
३३. '' दसलक्षण धर्म

सोनगढ़ में अन्य सामाजिक प्रवृत्ति

१	श्री जैन विद्यार्थीगृह	४	श्री महावीर औषधालय
२	''यात्रिकाश्रम (हिन्दी धर्मशाला)	५	''खुशाल अतिथिगृह
३	''कहान राहत केन्द्र		

सत् पुरुष श्री कानजीस्वामी के शुभ हस्त से हुई
पंचकल्याणक-प्रतिष्ठाएँ

क्रम	स्थान	मंगल प्रतिष्ठा दिन	वीर संवत्
१	सोनगढ़ जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला २	२४६७
२	सोनगढ़ समवसरण मंदिर	वैशाख कृष्णा ६	२४६८
३	वींछिया जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला ७	२४७५
४	लाठी जिनमंदिर	ज्येष्ठ शुक्ला ५	२४७५
५	राजकोट जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला १२	२४७६
६	सोनगढ़ मानस्तंभ	चैत्र शुक्ला १०	२४७९
७	पोरबंदर जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला ३	२४८०
८	मोरबी जिनमंदिर	चैत्र शुक्ला २	२४८०
९	वांकानेर जिनमंदिर	चैत्र शुक्ला १३	२४८०
१०	लींबडी जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला १३	२४८४
११	बम्बई जिनमंदिर	माघ शुक्ला ६	२४८५
१२	जामनगर जिनमंदिर	माघ शुक्ला ७	२४८७
१३	जोरावरनगर जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला १३	२४८९
१४	दादर-बम्बई जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला ११	५४९०

१५	राजकोट समवसरण	वैशाख शुक्ला १२	२४९१
१६	राजकोट मानस्तंभ	वैशाख शुक्ला १२	२४९१
१७	आंकडिया जिनमंदिर	माघ शुक्ला ५	२४९३
१८	हिम्मतनगर जिनमंदिर	माघ शुक्ला १०	२४९३
१९	अहमदाबाद जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला ५	२४९५
२०	मलाड-बम्बई जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला ७	२४९५
२१	घाटकोपर-बम्बई जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला ८	२४९५
२२	रणासण जिनमंदिर	चैत्र कृष्णा २	२४९६
२३	अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला २	२४९६
२४	भावनगर जिनमंदिर	वैशाख शुक्ला ३	२४९६
२५	घाटकोपर सर्वोदय हॉस्पीटल	चैत्र कृष्णा २	२४९८
२६	फतेपुर (गुजरात)	वैशाख शुक्ला ३	२४९८
२७	श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागम मंदिर	फाल्गुन शुक्ला १३	२५००
२८	भोपाल-पिपलानी	फाल्गुन कृष्णा ३	२५०१
२९	बेंगलोर	चैत्र शुक्ला १३	२५०१
३०	वढवाण शहर	फाल्गुन शुक्ला ८	२५०२

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के सहयोग से आयोजित

शिक्षण-शिविर

१	राजकोट	५	गुना	९	हिम्मतनगर
२	इंदौर	६	विदिशा	१०	अशोकनगर
३	जयपुर	७	फतेपुर	११	आगरा
४	भोपाल	८	तलोद	१२	उदयपुर

१३	प्रांतिज	२०	कोटा	२७	कानपुर
१४	जांबुडी	२१	तीर्थक्षेत्र श्री सोनागिर	२८.	फालेगाँव (महाराष्ट्र)
१५	छिंदवाडा	२२	मौ (म.प्र.)	२९	बेंगलोर
१६	मलकापुर	२३	कोल्हापुर	३०	नागपुर
१७	सोलापुर	२४	उज्जैन	३१	ललितपुर
१८	जलगाँव	२५	बंडा (म.प्र.)	३२	खनियाधाना
१९	तीर्थक्षेत्र पपौराजी	२६	सागर	३३	तीर्थक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी

पूज्य श्री कानजीस्वामी के शुभस्त से हुई

वेदी-प्रतिष्ठाएँ

क्रमांक	स्थान	मंगल प्रतिष्ठा-दिन	वीर संवत्
१	वढवाणशहर	वैशाख कृष्णा ८	२४८०
२	सुरेन्द्रनगर	वैशाख शुक्ला २	२४८०
३	राणपुर	वैशाख ''१३	२४८०
४	उमराला	ज्येष्ठ ''५	२४८०
५	बोटाद	ज्येष्ठ कृष्णा ७	२४८०
६	सोनगढ़ (नूतनमंदिर)	कार्तिक ''१२	२४८३
७	पालेज	मगसिर ''११	२४८३
८	खैरागढ़	चैत्र ''१	२४८५
९	वडिया	माघ ''६	२४८६
१०	जेतपुर	माघ ''११	२४८६
११	गोंडल	माघ ''१४	२४८६

१२	सावरकुंडला	फाल्गुन ''१२	२४८७
१३	दहेगाम	ज्येष्ठ कृष्णा ८	२४८९
१४	भोपाल	ज्येष्ठ शुक्ला ६	२४८९
१५	रखियाल	चैत्र कृष्णा ३	२४९०
१६	उज्जैन	फाल्गुन ''६	२४९१
१७	जसदण	माघ ''७	२४९३
१८	जयपुर	फाल्गुन शुक्ला २	२४९३
१९	उदयपुर	वैशाख कृष्णा ५	२४९३
२०	मक्सीपार्श्वनाथ	ज्येष्ठ ''७	२४९५
२१	जलगाँव	फाल्गुन शुक्ला ६	२४९६
२२	कानातलाव	वैशाख कृष्णा ८	२४९६
२३	अमरेली	फाल्गुन शुक्ला ५	२४९८
२४	रामपुरा	वैशाख ''५	२४९८
२५	बामणवाडा	वैशाख ''६	२४९८
२६	जांबुडी	कार्तिक ''१३	२५००
२७	गढडा	ज्येष्ठ कृष्णा २	२५००
२८	जूनागढ	माघ शुक्ला ५	२५०१
२९	खुरई	फाल्गुन कृष्णा ७	२५०१
३०	सनावद	फाल्गुन ''११	२५०१

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की जन्म-जयंती

जन्मधाम :- उमराला (सौराष्ट्र), जन्मतिथि : वीर संवत् २४१६, वैशाख शुक्ला २, रविवार

क्रमांक	जन्म-जयंती	स्थान	वीर संवत्
१	५९ वीं	सोनगढ़	२४७४
२	६० ''	राजकोट	२४७५
३	६१ ''	सोनगढ़	२४७६
४	६२ ''	सोनगढ़	२४७७
५	६३ ''	सोनगढ़	२४७८
६	६४ ''	सोनगढ़	२४७९
७	६५ ''	सुरेन्द्रनगर	२४८०
८	६६ ''	सोनगढ़	२४८१
९	६७ ''	सोनगढ़	२४८२
१०	६८ ''	अहमदाबाद	२४८३
११	६९ ''	सुरेन्द्रनगर	२४८४
१२	७० ''	फतेपुर	२४८५
१३	७१ ''	उमराला	२४८६
१४	७२ ''	सोनगढ़	२४८७
१५	७३ ''	राजकोट	२४८८
१६	७४ ''	लाठी	२४८९
१७	७५ ''	बम्बई	२४९०
१८	७६ ''	राजकोट	२४९१
१९	७७ ''	सोनगढ़	२४९२
२०	७८ ''	बोटाद	२४९३
२१	७९ ''	विंछिया	२४९४

२२	८० ''	बम्बई	२४९५
२३	८१ ''	भावनगर	२४९६
२४	८२ ''	पोरबंदर	२४९७
२५	८३ ''	फतेपुर	२४९८
२६	८४ ''	कलकत्ता	२४९९
२७	८५ ''	बम्बई	२५००
२८	८६ ''	अहमदाबाद	२५०१
२९	८७ ''	दादर (बम्बई)	२५०२

— सोनगढ़ में जिनमंदिर आदि विविध स्थापना —

१	श्री जैन स्वाध्यायमंदिर	ज्येष्ठ कृष्णा ८	२४६४
२	''सीमंधरस्वामी दिगंबर जिनमंदिर	फाल्गुन शुक्ला २	२४६७
३	''सीमंधरस्वामी का नूतन जिनमंदिर	कार्तिक ''१२	२४८३
४	''सनातन जैन ब्रह्मचर्याश्रम	भाद्रपद ''५	२४६८
५	''कुन्दकुन्द प्रवचन-मंडप	फाल्गुन ''३	२४८३
६	''समवसरण	ज्येष्ठ कृष्णा ६	२४६८
७	''कुन्दकुन्द श्राविकाश्रम	फाल्गुन ''१३	२४७७
८	''गोगीदेवी ब्रह्मचर्याश्रम	माघ शुक्ला ५	२४७८
९	''मानस्तंभ	चैत्र ''१०	२४७९
१०	''कुन्दकुन्द कहान जैन शास्त्र भंडार	भाद्रपद ''४	२४९३
११	''महावीर कुन्दकुन्द परमागममंदिर	फाल्गुन ''१३	२५००

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की संघ सहित

❀ तीर्थयात्राएँ ❀

१ श्री शत्रुंजय (पालीताना)
२ ''गिरनार
३ ''सम्मेदशिखर
४ ''श्रवणबेलगोल
५ ''पौन्नूरहिल
६ ''पावागढ़
७ ''गजपंथा
८ ''मांगीतुंगी
९ ''बड़वानी
१० ''पावागिरि-ऊन
११ ''सिद्धवरकूट
१२ ''मक्सी पार्श्वनाथ
१३ ''सोनागिर
१४ ''शौरीपुर
१५ ''मथुरा
१६ ''अयोध्या
१७ ''बनारस
१८ श्री सिंहपुरी
१९ ''चंद्रपुरी
२० ''पटना
२१ ''राजगृही
२२ ''कुंडलपुर
२३ ''पावापुरी
२४ ''चंपापुरी
२५ ''कुन्दाद्रि
२६ ''मूडविद्री
२७ ''कारकल
२८ ''वेणूर
२९ ''कुंथलगिरि
३० ''अंतरिक्षजी
३१ ''मुक्तागिरि
३२ ''आहारजी
३३ ''पपौराजी
३४ ''थूवौनजी
३५ श्री चंदेरी
३६ ''खजुराहो
३७ ''नैनागिरि
३८ ''द्रौणगिरि
३९ ''देवगढ़
४० ''कुंडलपुर
४१ ''खंडगिरि
४२ ''उदयगिरि
४३ ''रामटेक
४४ ''अंकलेश्वर
४५ ''तारंगाजी
४६ ''सोजत
४७ ''महावीरजी
४८ ''पदमपुरी
४९ ''केशरीयाजी
५० ''हस्तिनापुर
५१ ''कुम्भोज बाहुबली

सोनगढ़ में रचाए गये पूजन-विधान

१ श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजन-विधान
२ '' अकृत्रिम जिन शाश्वत जिनालय पूजन-विधान
३ '' दसलक्षणधर्म पूजन-विधान
४ '' रत्नत्रय पूजन-विधान
५ '' सिद्धचक्र पूजन-विधान
६ '' बीस विहरमान पूजन-विधान
७ श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन-विधान
८ '' अष्टोत्तर सहस्त्रनाम मंडल पूजन-विधान
९ '' ढाईद्वीप पूजन-विधान
१० '' चौसठ ऋद्धि मंडल विधान
११ '' तेरहद्वीप पूजन-विधान
१२ '' पंच परमेष्ठी पूजन-विधान

राजकोट के विश्वविद्यालय में 'ज्ञानगोष्ठी'

प्रश्नः—अनुभूति के काल में ज्ञान स्व-पर-प्रकाशक किसप्रकार है ?

अपने ज्ञानगुण को जाने, वह स्व-प्रकाशक और ज्ञान से अतिरिक्त आनंदादि अन्य गुणों को जाने, वह पर-प्रकाश—इसप्रकार स्व-परप्रकाशक है।

प्रश्नः—सविकल्पदशा में ज्ञान स्व-परप्रकाशक किसप्रकार है ?

ज्ञानपर्याय स्वयं के आत्मा को जाने और परसंबंधी अपनी ज्ञानपर्याय को भी जाने—इसप्रकार निश्चय से स्व-परप्रकाशक है।

ज्ञान पर को जानता है, ऐसा कहना - वह व्यवहार है।

प्रश्नः—समयसारजी शास्त्र में सर्वज्ञशक्ति का स्वरूप क्या कहा है ?

समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप परिणमता ऐसा आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति। सर्व को जाने, इसलिये सर्वज्ञ है—ऐसा नहीं है; आत्मज्ञ में ही सर्वज्ञपने का समावेश हो जाता है।

प्रश्नः—शुक्ललेश्या और शुक्लध्यान में क्या अंतर है ?

शुक्ललेश्या तो शुभभावरूप है, उससे तो पुण्य का बंध होता है। वह कोई-कोई मिथ्यादृष्टि अभवी को भी होती है। शुक्ललेश्या १३ वाँ गुणस्थान में भी कही है, यद्यपि वहाँ कषाय का तो सर्वथा अभाव है किंतु योग अर्थात् प्रदेशकंपन है, इसलिये उपचार से शुक्ललेश्या कही है।

शुक्लध्यान तो आत्मा की विशेष शुद्धिरूप है, वह धर्म है—निर्जरा है और उसका प्रारंभ ८ वें गुणस्थान से होता है।

प्रश्नः—शास्त्राभ्यास से भी तत्त्व विचारवाले को सम्यक्त्व का अधिकारी क्यों कहा है ?

जीव ऐसा है, अजीव ऐसा है, पुण्य-पाप आदि का स्वरूप ऐसा है, ऐसा तत्त्व का चिंतवन स्वलक्षी होने से वह सम्यक्त्व का कारण है। शास्त्राभ्यास से भी तत्त्व का चिंतवन होता है किंतु वह परलक्षी होने से सम्यक्त्व का कारण नहीं है।

केवलज्ञान की महिमा

[गतांक से आगे]

राजा ११—हे प्रभु! आपने दिव्य उपदेश में चैतन्यतत्त्व की अगाध सर्वोत्कृष्ट महिमा बतलायी है; ऐसे चैतन्यतत्त्व की अनुभूति करना ही जिनशासन है।

रानी ११—अहो! भगवान सर्वज्ञदेव के उपदेशादि की क्रियाएँ तीर्थंकर नामकर्म के उदय से होती हैं, इसलिये औदयिक होने पर भी, मोह के अभाव के कारण उनकी वे क्रियाएँ क्षायिक ही मानी गई हैं, क्षण-क्षण उन्हें कर्म का ही क्षय होता जाता है।

राजा १२—हे प्रभु! आपने सच ही कहा है कि—

"सेवन से मिथ्यात्व के हुआ जीव को दुःख;
छोड़ उसे सम्यक् भले, होता सच्चा सुख;
सम्यग्दर्शन प्राप्त कर, जो है जग में सार;
वीतराग विज्ञान से ही जाओ भवपार।"

रानी १२—मिथ्यात्वादि भाव ही जगत का जाल है; उसमें फँसने से जीव चार गति में भ्रमण करता है और दुःखी होता है। उस दुःख से छुड़ाने तथा सुख की प्राप्ति कराने में आपकी दिव्यध्वनि निमित्तकारण है।

राजा १३—अहा! केवलज्ञान, वह ज्ञानमय है; ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। एक ज्ञान ही आत्मा का निजपद है; उसके सेवन से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

रानी १३—भगवान नेमिनाथ पहले साधुपद में थे; वे अब केवलज्ञान प्राप्त करके अरहंतपद में आये। पंच परमेष्ठी में पाँचवें पद पर थे, वे अब पहले पद में आ गये; 'णमो लोए सव्व साहूणं' में से अब 'णमो अरिहंताणं' में आ गये।

राजा १४—भगवान ने साधुपद भी गिरनार के सहस्राम्रवन में लिया था और आज केवलज्ञान भी गिरनार में ही प्राप्त किया... अब मोक्षपद भी गिरनार से ही प्राप्त करेंगे।—इसप्रकार भगवान नेमिप्रभु को पाँचवें से लेकर चौदहवें तक के सब गुणस्थान इसी भूमि में प्रगट हुए हैं।

रानी १४—अहा! केवलज्ञान का क्या कहना! वह तो आत्मा का स्वभाव है। उस केवलज्ञान का स्वीकार करनेवाले जीव को ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता हो जाती है और वह मोक्ष का साधक हो जाता है। इसलिये केवली भगवान ने उसके अनंत भव देखे ही नहीं हैं, क्योंकि उसे अनंत भव होते ही नहीं।

राजा १५—वाह! केवलज्ञान के न्याय में तो बड़ी गंभीरता है, केवलज्ञान के स्वीकार में तो ज्ञानसन्मुखता का अनंत पुरुषार्थ है; इसलिये सर्वज्ञ की श्रद्धा, वह धर्म का मूल है।

रानी १५—अहा! हमारे महान भाग्योदय से अपनी इस सौराष्ट्र भूमि में गिरनारधाम में आज हमें सर्वज्ञ भगवान नेमिनाथ प्रभु के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। सर्वज्ञदेव के पावन विहार से हमारे सौराष्ट्र की धरती पावन हुई है। भविष्य में चौबीसवें वर्धमान तीर्थंकर इस सौराष्ट्र भूमि में विहार करेंगे और उनके नाम से वर्धमानपुरी नगरी की रचना होगी; उस वर्धमानपुरी में धर्म का मंगल उत्सव होगा।

राजा १६—वाह! नेमिनाथ प्रभु इस सौराष्ट्र भूमि में विचरे हैं और महावीर प्रभु भी विचरेंगे। अरे! आज ही दोनों तीर्थंकर भगवंत एक साथ पधारे हों, ऐसा मंगल उत्सव मनाया जा रहा है।

रानी १६—अपनी यह सौराष्ट्र की भूमि तो सिंहों को उत्पन्न करनेवाली है। आज धर्म के केशरी सिंह समान केवलज्ञानी अपनी इस भूमि में पैदा हुए हैं। चलो, हम सब गिरनार धाम में चलें और तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु के दर्शन करके धन्य बनें। उनकी दिव्यध्वनि सुनकर रत्नत्रयधर्म की उपासना करें और प्रभु के साथ मोक्षपथ पर चलें।

बोलो नेमिनाथ भगवान की जय!

मनुष्य-जीवन में करने योग्य

सतत पुरुषार्थ करे तो क्षणभर में प्रगट हो ऐसा आत्मा है। सुख, आनंद सब आत्मा में हैं, बाहर कुछ भी नहीं है। चैतन्यतत्त्व को उसकी गहराई में उतरकर जान लेना चाहिये। उसी के लिये श्रवण, मननादि सब है। मनुष्य-जीवन में यही करने योग्य है।

आप अस्तित्व के फूल हैं

[केसरीचंद 'धवल' कोथली]

दि
व्य
-
पु
रु
ष

८७
वीं
-
ज
न्म
ज
यं
ती

सुबह फूल खिलता है, शाम को मुरझा जाता है; सूरज भी उगता है और ढल जाता है; हर घटना घट-घट कर मिटती है। अंत का ही अंत होता है। ये सब क्षणवर्ती का खेल है। जो अनादि से चल रहा है। परंतु जीवन का अस्तित्व सदा है। उस चैतन्य के अपूर्व अस्तित्व का न कोई सवेरा है और न कोई शाम है। परम अस्तित्व का न जन्म है, न मरण है, वह तो सब पीड़ाओं से जुदा है। उसे जो अपनी आँख से देख लेता है, अपने ज्ञान से जान लेता है, वही उसे चारित्र में पाता है।

हे जीवन सन्तः—आपने परम अस्तित्व को अपनी आँख से देखा है, अपने ज्ञान से जाना है और उसे अपने जीवन में ही पाया है। जो पाने योग्य है, वह तो अस्तित्व में ही है। इस अपूर्व जिनवचन का मर्म आपकी वाणी से बोल रहा है। आपके अनुभवजन्य बोल ने ही समयसार का मर्म खोला है। भूतार्थ अस्तित्व का जो द्वार बंद था, उसे आपने खोला है। संत सदा ही अस्तित्व का द्वार खोलते हैं। क्योंकि अस्तित्व बाहर में नहीं है, उसका पाना तो अंदर में ही होता है। बाहर तो सुबह और शाम है। खिलना और मुरझाना है, इसलिये आपने दिगंबर जैन संत का द्वार खोलकर, सबको अंदर पहुँचकर देखने को कहा है।

जो परंपरा आँख बंद कर, परिधि पर घूम रही थी, उसे आपने केन्द्र पर पहुँचने के लिये ज्ञानचक्षु प्रदान कर, परिधि की पीड़ा का बोध कराया है। क्योंकि चैतन्य चिन्मूर्ति परिधि पर नहीं है, वह तो अस्तित्व के केन्द्र पर ही मौजूद है। जो भी परिधि को छोड़कर दूरी को दूर कर केन्द्र पर पहुँचे हैं, उन महान भाग्यशाली ज्ञानीजनों में आप भी हैं; क्योंकि आपने भी परंपरा की परिधि को छोड़कर दूरी को दूर करने का प्रबल प्रयास किया है। आपकी दृष्टि तो अस्तित्व के केन्द्र पर पहुँच गई है। पहले दृष्टि ही केन्द्र पर पहुँचती है। फिर बाद में पैर भी चलकर पहुँचते हैं।

जो अस्तित्व का नाद आपके अंतरसितार से उठ रहा है, वह वास्तविक है। उससे हम सबको अपने अस्तित्व का आनंद पाने का अपूर्व योग मिला है। जब आपने समयसार का सितार अनुभव की अंगुली से बजाना शुरु किया, तब प्रतिकूलता भी स्वर को भंग करने अनेक बार आयी, परंतु वह स्वयं ही भंग होकर विनाश की गोद में चली गई। क्योंकि अभंग को कोई भी भंग करनेवाला नहीं है। लहर सागर को मिटाने का स्वप्न देख सकती है, पर सागर को मिटा सकती नहीं। स्वयं मिटनेवाली, अमिट को मिटा सकती ही नहीं। इसका आपको भान है। इससे ही आपने अनेक प्रतिकूल लहरों को मिटाने के लिये अनुकूल लहर को आमन्त्रण दिया नहीं; क्योंकि ज्ञानीजनों को बाह्य में कोई भी अनुकूल-प्रतिकूल होता नहीं। आपके जीवन में लहर महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब आँख अस्तित्व के सागर को देख लेती है, तब लहर का महत्व मिट जाता है। लहर तो हर समय नवीन होती है, पर उसका महत्व होता नहीं; महत्व सदा रहनेवाले सागर का ही होता है। सागर सदा पाया जाता है, इससे वह महत्वपूर्ण है। उसे अपने दृष्टि का विषय बनाया है। आने-जानेवाली लहर ज्ञान में तो आती है, परंतु आँख तो सिर्फ लहर बिना के सागर को ही देखती है।

जीवंत ज्ञानी को लहर का आग्रह होता नहीं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, वे किसी भी अवस्था विशेष के लिये आतुर होते नहीं। अवस्था लहर रूप से आती है, उसे जान लेते हैं। उस परिस्थिति को न बदल करके अपनी मन:स्थिति को बदलकर जीवन-आनंद को पाते हैं। और जो भी होती है, उसके ज्ञाता होते हैं। आप सबको जानते हैं क्योंकि आपने जीवन के जिनालय में जानना ही जगाया है। स्वयं में जागा हुआ अस्तित्व ही वैशाख सुदी दोज के दिन सबको जगाने भारत में आया है। सबको जीवन जागृति का संदेश सुनानेवाले, आपकी आँख केंद्र पर है, इससे आपके चरण भी केन्द्र को पानेवाले हैं। आपने अपूर्व यात्रा का प्रारंभ किया है, इससे आपका जन्म-दिवस जयवंत वर्तो। ❀

परम शुद्धतत्त्व के निर्भीक संदेशवाहक

दिव्य-पुरुष

८७वीं-जन्मजयंती

परम आत्मार्थी सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी अपने आध्यात्मिक जीवन के ८६ वर्ष पूर्ण कर ८७वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, यह हमारे लिये हार्दिक प्रसन्नता का विषय है। और हमें अपने जीवन में पूज्य श्री की ८७वीं जन्मजयंति समारोह मनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, यह भी हमारे जीवन का परम सौभाग्यशाली समय है।

जिस निर्भीकता के साथ आपने परम वीतरागमय यथार्थ वस्तुतत्त्व को अंगीकार किया, वह वर्तमान इतिहास की एक अनुकरणीय घटना के रूप में सुरक्षित रहेगी। गत ४० वर्षों से निरंतर आपके तात्त्विक प्रवचनों का लाभ समाज को मिलता रहा है। शुद्धतत्त्व का प्रतिपादन ही आपकी सरस व अन्तःनिस्रत वाणी का मुख्य विषय रहा है। अनादिकाल से आत्मविस्मृत यह मोही अज्ञानी जीव अपने परमात्मस्वरूप को समझकर एकबार तो दृढ़तापूर्वक अपने परमात्मस्वरूप की हाँ पाड़े—उसे स्वीकार करे। वस्तुतः यही ध्येय मुख्यरूप से प्रतिध्वनित है, न केवल आपके आध्यात्मिक प्रवचनों में वरन चर्चा वार्ताओं में भी, और निश्चितरूप से यहीं से प्रारंभ होता है, वह मार्ग जो आत्मा को अपने पूर्णत्व की ओर ले जाता है।

भारत जैसे विशाल देश के कोने-कोने में आज जो दैनिक और नियमित शास्त्रस्वाध्याय की स्वस्थ परंपरा पुनर्विकसित हुई है, तथा न केवल प्रौढ़ वर्ग में किंतु विशेषतः नवयुवक वर्ग में भी जो तीव्र अभिलाषा जागृत हुई है, जैनधर्म के स्वरूप को समझने की, इसका मुख्य श्रेय पूज्य स्वामीजी को ही है।

परम पूज्य आचार्य कुन्दकुन्ददेव, आचार्य अमृतचंद्रसुरि आदि महान जैनाचार्यों की वाणी को आत्मसात् कर जैन तत्त्वदर्शन के संबंध में आपने जो नूतन प्रकाश फैलाया है, वह वर्षों तक आत्मार्थी जीवों को सम्यक् आलोक प्रदान करता रहेगा। पूज्य स्वामीजी की ८७वीं जन्म-जयंति के अवसर पर

भोपाल मुमुक्षु मंडल पूज्यश्री के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हुआ कामना करता है, कि पूज्यश्री शताधिक वर्षों तक जीवित रहकर सम्यक् वीतराग धर्म का प्रसार करते हुए संसारी अज्ञानी जीवों में आत्मकल्याण की प्रेरणा प्रदान करें।

भवदीय

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, भोपाल

स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन

[राजमल पवैया, भोपाल]

स्वर्णपुरी के संत तुम्हारी जन्मजयंती का शुभ दिन,
स्वर्णपुरी के संत प्रफुल्लित हुआ आज मन का उपवन,
स्वर्णपुरी के संत आज यह धन्य हुआ मेरा जीवन,
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारे चरणों में मेरा वंदन,
स्वर्णपुरी के संत तुम्हें है भावांजलि सादर अर्पण।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥१॥

सागर की लहरें करती है आज तुम्हारा ही स्वागत,
हृदय हिंडोले झूलो गुरुवर नव वसंत सम अभ्यागत,
आज तुम्हारी अनुकंपा से यह मस्तक है श्रद्धानत,
भव्य दिव्य चैतन्यविलासी आत्मध्यान में तुम हो रत,

दिव्य-पुरुष

तुम्हें समर्पित है भावों का मलयागिर शीतल चंदन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥२॥

इस भारत की पावन भू पर तुमने गुरुवर जन्म लिया,
संत कानजीस्वामी गुरु सौराष्ट्र प्रांत को धन्य किया,
किया अध्ययन समयसार का कुन्दकुन्द को नमन किया,
सीमंधर प्रभु के उपदेशों का जीवन भर मनन किया,

स्व-पर भेद को जाना तुमने क्या है जड़ क्या है चेतन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥३॥

पाखंडों की नींव हिला दी रूढ़िवाद का कर संहार,
मिथ्या से परिपूर्ण मान्यताओं पर जमकर किया प्रहार,
दृढ़ता से तुमने बतलाया निश्चय श्रेष्ठ हेय व्यवहार,
सम्यक्श्रद्धा से यह चेतन हो जाता भवसागर पार,

पाप-पुण्य सब हेय बताया उपादेय निज अवलंबन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥४॥

सद्गुरुदेव कानजीस्वामी जैनधर्म के तुम मर्मज्ञ,
आत्मधर्म के ज्ञाता सातों तत्त्वों के वक्ता स्थितप्रज्ञ,
तुम चिरायु हो सहस्त्रायु हो मुमुक्षुओं के हित तत्त्वज्ञ,
यही भावना आप बनें गुरु आगामी भव में सर्वज्ञ,

भावी सिद्धात्मा को मेरा कोटि कोटि शत शत वंदन।
स्वर्णपुरी संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥५॥

८७ वीं-जन्मजयंती

आप स्वयं समयसार हैं

(ज्ञानचंद जैन, विदिशा)

१. अनंत शांतिस्वरूप आत्मा अपने ज्ञान से ही ज्ञानी होता है, इसलिये आपने अन्य का आश्रय छोड़कर, अपने एकत्व-विभक्त चैतन्य को स्वयं पाया है। चैतन्यस्वरूप का पर्याय में प्रगट होना ही ज्ञानभाव का जन्म है। अपने ज्ञानमय त्रिकाल अस्तिस्वरूप को स्वीकार करनेवाले की परमात्मस्वरूपी अलौकिक जन्म-जयंति का योग भारतवासियों को प्राप्त हुआ है।

२. हे स्वयं समयसार! आप अपने ज्ञायकस्वरूप के वास्तविक भक्त हैं। आपने स्वयं में जो पाया है, वही समयसार है। स्वयं के एकत्व-विभक्त चैतन्य-अस्ति को जिस समय अस्तिरूप स्वीकार किया जाता है, तब सम्यग्ज्ञान का स्रोत प्रवाहित होकर ये जीवन स्वयं ही समयसार होता है। जीवन को स्वयं समयसाररूप अनुभव करनेवाले अनेक ज्ञानीजनों में आपका अस्तित्व है। इसलिये आपकी वाणी में अपने अस्तिस्वरूप को बोधपूर्वक दिगम्बर जैन संतों की अपूर्व भक्ति का भाव आता है। अपने अंतरतत्त्व को जो पहिले से ही स्वयं परिपूर्ण स्वीकार कराते हैं, वे संत कहते हैं, हमने अपने निज वैभव को निज में पाया है, इससे आप भी अपने में ही अपना स्वरूप देखकर जानकर जीवन में पाना, यही स्वयं समयसार होने की अपूर्व कला है, ये कला आपको प्राप्त है।

३. निज वैभव को जाननेवाले संत से सदा निज वैभव की ही महिमा अखंडरूप से सुनने को मिलती है; तब सौभाग्यशाली जीव एकत्व-विभक्त अपने अस्तित्व को स्वानुभूति से प्राप्त करता है। जिस समय स्वानुभूति में चैतन्यतत्त्व प्रकाशित होता है, उसी समय अनादि से चली आई भूल की शूल विसर्जित होकर, जीवन के बगीचे में ज्ञायकभाव का फूल खिलता है।

दिव्य–पुरुष 卐 卐 卐

८७वीं–जन्मजयंती

४. निजत्व को जगानेवाले, आपका सत्संग इस जीवन में न मिलता तो अनादि से भूले हुए त्रिकाली सत् दिगम्बर स्वरूप शुद्धात्मा की महिमा कैसे आती, आपने ही हम सबको अपना स्वरूप देखने का स्वर्ण अवसर दिया है। अपने जीवन को स्वयं ने, स्वयं से, स्वयं के लिये धन्य करके दूसरे सभी के जीवन को स्वयं में स्वयं से जीने की कला दी है, इसलिये हे दोज के चंद्रमा, आपको पूर्णता की पूर्णमासी ही प्राप्त होनेवाली है, अपने त्रिकाली अस्तिस्वरूप में रमण करना ही आपको भाता है। निजत्व की रुचि ही जिनत्व को देती है, ये बात आपकी वाणी में आती है। जो स्वसमय को दृष्टि का विषय बनाकर स्वयं समयसार होकर अपने कारणपरमात्मा की आराधना करते हैं, वे ही जीवन में नियमसार को पाकर, प्रवचनसार हो जाते हैं। हे लघुनंदन! ये सब आपमें देखने को मिलता है, क्योंकि आप निज ज्ञान से ज्ञानी हैं, वीतराग प्रभु के लघुनंदन का तो इंद्र भी वंदन करते हैं, हम सबको भी पवित्र अवसर मिला है, कि हमने भी विदेही जीवंत परमात्मा के लघुनंदन को भारत में पाया है, इस मांगलिक जन्म–जयंति की बेला में अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

- साधक जीव का चित्त सदैव सर्वज्ञ भगवंत के साथ केलि करता रहा है; उसकी आत्मसाधना का अतीन्द्रिय–तार सर्वज्ञस्वभाव के साथ लगा हुआ है, वह कभी नहीं टूटता।
- ऐसा अनंत शक्तिरूप स्वभाव वही आत्मा का स्व है, और आत्मा उसका स्वामी है। इसके सिवाय अन्य कोई न आत्मा का स्व है, न आत्मा उसका स्वामी।

शासनसूर्य गुरुदेव को श्रद्धांजलि

हे गुरुदेव! संसाररूपी अथाह समुद्र में गोते खा रहे हम दु:खी जीवों को आपने चैतन्यजहाज की शरण बतलाकर बचाया है। धर्मसाधन के सच्चे मौसमरूप जो यह मानवपर्याय, उसमें यदि आपकी शरण न मिली होती तो आत्माश्रित मार्ग के लक्ष बिना हम किसके आधार से जीवन जीते!

हे नाथ! चैतन्यजीवन का मार्ग बतलाकर आपने ही हम पामर जीवों को सजीवन किया है। श्री समयसारादि महान शास्त्रों का अपूर्व श्रवण कराके श्रोत्रों को सफल किया है। अज्ञानांधकार को भेदने का मार्ग बतलाकर हमें ज्ञाननेत्र दिये हैं। हिताहित का विवेक कराके हमें मन दिया है। सचमुच आप ही हमारे जीवन के निर्माता हैं।

जिसप्रकार जगत में सूर्योदय होने पर जगत के जीव निद्रा छोड़कर, जागृत होकर, प्रसन्नतापूर्वक अपने हितकार्य में प्रवर्तते हैं; उसीप्रकार हे शासनसूर्य गुरुदेव! जगत के जीवों को मोहनिद्रा से जागृत होकर अपने आत्महित में सावधान होने में सूर्यसमान आपका यह पावनकारी जन्म महान हितकारी बना है।

हे वात्सल्यमूर्ति! आपकी अमृतवाणी अर्थात् दिव्यध्वनि का एक झरना.... श्रोताओं की पामरता के अनादि पटल को भेदकर गुप्त गुफा में विराजमान निज प्रभुत्वशक्ति का दर्शन कराके भव्यों को मुक्ति का वचन देती है।

हे करुणासागर गुरुदेव! आपकी इस कल्याणकारी ८७वीं जन्मजयंती के अवसर पर हम आपके चरणों में श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हैं।

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल दादर (बम्बई) अंतर्गत,
पूज्य श्री कानजीस्वामी ८७वीं
जन्म-जयंती महोत्सव समिति।

धन्य है गुरुदेव को! जिनके जन्मदिवस (जन्म जयती) का प्रत्यक्ष लाभ लेनेवाला पुण्यशाली मुमुक्षुओं का समूह उनके दर्शनमात्र से कृतकृत्य हो जाता है! ऐसे गुरुदेव के जन्मदिवस का बारम्बार आते रहें, यही भावना!

पूज्य स्वामीजी की असीम उपकारतावश उनके प्रति अपार
भक्ति, बहुमान तथा अर्पणतारूप श्री सोगानीजी के हृदयोद्गाररूप

भक्ति-पुष्प

१. सोनगढ़ की चिन्मय भव्यमूर्ति को अधिक समीप होकर गहन दृष्टि से देखता रहता हूँ।

२. पूज्य गुरुदेव की स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखों से गर्म आँसु आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है, उनका असंगरुचि का उपदेश कानों में गूंजता रहता है... उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्ति के चरणों में शीघ्र अपने आपको पाऊँ।

३. अरे विकल्प! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेव के संग में ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अंत कर डालेगा।

४. हे गुरुदेव! आप कितनी पहोलाई तक प्रसर चुके हो, पहोलाई भी है साथ ही ठोसपना भी। हे गुरुदेव! आपकी वाणी का स्पर्श होते ही मानों विश्व की उत्तमोत्तम वस्तु की प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ। अरे! शास्त्रों में जिस मुक्ति की इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्र ने इतना सरल कर दिया... सहज ज्ञानकला।

५. हे गुरुदेव! लोकोत्तर लाभ हेतु आपके वचनों पर श्रद्धा की है, आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ... ऐसी तीव्र अभिलाषा है, दरिद्री को चक्रवर्तीपने की कल्पना नहीं होती, पामरदशावालों को 'भगवान हूँ—भगवान हूँ' की रटन लगाना। हे प्रभो! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है।

दिव्य – पुरुष 卐 卐 卐

६. परम पिताश्री ने हम सब पुत्र मंडल को अटूट लक्ष्मी भंडार भोग हेतु प्रदान किया है, तीर्थंकर योग सूचित करता है कि सर्व सज्जन पुत्रगण इस भोग को निसंदेह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।

७. (अश्रुसहित गदगदभाव से) अनंत तीर्थंकर हो गये, मगर अपने तो गुरुदेवश्री सबसे अधिक हैं, जैसे अपने को धन की जरूरत हो और कोई लखपति अपनी जरूरत अनुसार धन देवे तो वह अपने लिये दूसरा करोड़पति से भी अधिक है, ऐसे गुरुदेवश्री अपने लिये तीर्थंकर से भी अधिक हैं, जिससे अपने को हित हुआ है।

८. गुरुदेवश्री की सिंह गर्जना ऐसी है कि दूसरों को निर्भय बना देती है। और जंगल के सिंह की गर्जना तो दूसरों को भयवान बनाती है तो ये सिंह में बहोत फर्क है।

९. मैं तो महाराजसाब को शुद्ध निष्क्रिय चैतन्यबिंब ही देखता हूँ, जो विकल्प, वाणी और शरीर की क्रियायें हो रही हैं, उसको महाराजसाब नहीं मानता हूँ।

१०. महाराजसाब ने दुष्काल में सुकाल कर दिया है, यह क्या कम महत्व की बात है? इस काल में जहाँ ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती है, वहाँ धोधमार वर्षा कर दी है।

११. गुरुदेवश्री के उपदेश में इतना खुलासा है कि ओनिंब से धर्म पंचमकाल तक टिकेगा ऐसा दिखता है।

१२. पूज्य गुरुदेवश्री ने कैसा वस्तुस्वभाव स्पष्ट कर दिया है, वह तो पका पकाया हलवा है, अपन तो सीधा खाते हैं, नहीं तो हमारी तो शास्त्र में से निकालने की इतनी शक्ति नहीं है।

१३. यहाँ तो महाराजसाब ने भूमिका तैयार कर दी है। बस, सब थोड़ा-सा सुख का बीज बो देना, जिससे महा आनंद होवे।

८७ वीं – जन्मजयंती

१४. गुरुदेवश्री घोलन से परे हैं, लेकिन उनके घोलन में पर से जो करुणा है, उसमें न्याय आदि निकलते हैं, जैसे पिता का धन पुत्र बिना श्रम भोगता है, ऐसे गुरुदेवश्री से मिला हुआ न्याय आदि को अपन बिना श्रम भोगो।

१५. अहो! जो भावे तीर्थंकर गोत्र बंधाय, ते भाव पण नुकशान कर्ता छे, यह बात कहने की किसकी ताकत है? वो तो गुरुदेव का ही सामर्थ्य है।

१६. सब बात का गुरुदेवश्री ने मसाला तैयार कर रखा है, तो कोई बात विचारनी नहीं पड़ती, नहीं तो साधक हो फिर भी मसाला तैयार करना पड़ता है।

अंतर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजीस्वामी

[डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, जयपुर]

"आत्मा... आत्मा... आत्मा भगवान आत्मा सदा ही अति निर्मल है, पर से अत्यंत भिन्न परम पावन है। यह त्रिकाली ध्रुवतत्त्व आनंद का कंद और ज्ञान का धनपिंड है। रंग, राग और भेद से भी भिन्न अतीन्द्रिय परम पदार्थ निजात्मा ही एकमात्र आश्रय करनेयोग्य है। उसका ही आश्रय करो, उसमें जम जावो, उसमें ही रम जावो।" यह प्रेरणा देते-देते लाखों की सभा में भी क्षणभर को ही सही, अपने में रम जानेवाले, अपने में ही जम जानेवाले युगांतरकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजीस्वामी को लाखों आँखों ने लाखों बार अपने में मग्न होते देखा होगा। उन्होंने क्या कहा? उसका क्या भाव है? कानों से सुनकर चाहे बहुत कम लोगों ने समझ पाया हो, पर आँखों से देखनेवालों ने यह अनुभव अवश्य किया होगा कि स्वामीजी जो कुछ बोल रहे हैं, वह अंतर की गहराई से आ रहा है, मात्र व्याख्यान के लिये व्याख्यान नहीं है।

गंगा गये गंगादास और जमना गये जमनादासवाली बात वहाँ नहीं है। चाहे ५० व्यक्तियों की सभा हो, चाहे पचास हजार की। चाहे अपने हों, चाहे पराये। वहाँ तो एक ही बात है—पर और पर्याय से भिन्न आत्मा की। गिरगिट का सा रंग बदलनेवाले तथाकथित आध्यात्मिक प्रवक्ताओं के समान अंदर कुछ और बाहर कुछ और वाली बात उनमें आप कभी नहीं पायेंगे।

उनकी वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है। वे अपनी बात, अनुभव की बात, आगम की बात सबके सामने रखते हैं। कौन क्या गलत कह रहा है, गलत कर रहा है; यह जानने के लिये, सुनने के लिये, कहने के लिये उनके पास समय नहीं है, सत्य का अनुभव करने और निरूपण करने से अवकाश मिले तब तो यह सब किया जाये। यह तो उनका काम है, जिन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है, धर्म जिनका धंधा है। धर्म को जीवन माननेवाले स्वामीजी इन सब बातों से बहुत दूर हैं।

यदि आत्मज्ञान का नाम ही अध्यात्म है तो स्वामीजी सच्चे अर्थों में आध्याम्कि हैं क्योंकि उनका चिंतन, मनन, कथन, अनुभवन सब कुछ आत्मामय है। अधि = जानना, आत्म = आत्मा को, इसप्रकार अपने आत्मा को जानना ही अध्यात्म हुआ।

पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग कलिकाल में सहज संभव नहीं है। जिनके जीवन में पवित्रता पायी जाती है, उनकी कोई बात नहीं सुनता और जिनके समक्ष लाखों मानव झाँकते झुकते हैं, जिनको सर्व सुविधाएँ सहज उपलब्ध हैं; वे पवित्रता से बहुत दूर दिखायी देते हैं; जैसे उनका पावनता से कोई संबंध ही न हो। उन्हें पवित्रता से कोई सरोकार नहीं। स्वामीजी एक ऐसे युगपुरुष हैं जिनमें पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग है। उनमें सोना सुगंधित हो उठा है।

वे अंतर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष हैं। एक ओर जहाँ स्वच्छ शुभ्र श्वेत परिधान से सर्वांग ढंकी एकदम गोरी भूरी विराट काया, उस पर उगते हुए

सूर्य-सा प्रभा संपन्न उन्नत भाल तथा कभी अंतर्मग्न गुरु गंभीर एवं कभी अंतर की उठी आनंद हिलोर से खिलखिलाता गुलाब के विकसित पुण्य सदृश ब्रह्मतेज से दैदीप्यमान मुखमंडल; व्याख्यान में उनकी वाणी से कुछ भी न समझ पानेवाले हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किये रहता है। वहीं दूसरी ओर स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरंतर, आत्मानुभव एवं स्वाध्याय में मग्न, सबके प्रति समताभाव एवं करुणाभाव रखनेवाले विनम्र; पर सिद्धांतों की कीमत पर कभी न झुकनेवाले अत्यंत निस्पृही एवं दृढ़ मनस्वी गणधर जैसे विवेक के धनी, वज्र से भी कठोर, पुष्प से भी कोमल उनका आंतरिक व्यक्तित्व बड़े-बड़े मनीषियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है।

काठियावाड़ (आधुनिक पश्चिम गुजरात) की मिट्टी में ही न मालूम ऐसी क्या विशेषता है जिसने एक ही शताब्दी में ऐसे दो महापुरुषों को जन्म दिया है, जिन्होंने लौकिक और पारलौकिक दोनों क्षितिजों के छोर पा लिये हैं। पहिले थे महात्मा गाँधी और दूसरे हैं कानजीस्वामी। एक ने हमें लौकिक स्वतंत्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया अपितु स्वतंत्रता भी प्रदान की है, दूसरा हमें पारलौकिक अलौकिक आध्यात्मिक स्वतंत्रता का पथ प्रदर्शन कर रहा है, स्वयं उस पर चल रहा है, दूसरों को चलने का प्रेरणास्रोत बन रहा है। एक साबरमती का संत कहा जाता था तो दूसरा सोनगढ़ का संत कहा जाता है। एकबार इन दोनों महात्माओं को मिलन भी हुआ था, जब गाँधीजी राजकोट में स्वामीजी के प्रवचन में पधारे थे।

सोनगढ़ आज तीर्थधाम बन गया है। जहाँ-जहाँ संतों के पग पड़ते हैं, वे स्थान तीर्थधाम बन जाते हैं। सोनगढ़ क्यों न तीर्थधाम बने, वहाँ तो आध्यात्मिक सत्पुरुष चालीस वर्ष से आत्मसाधना कर रहे हैं, आत्मसाधना और आत्म-आराधना का पथ-प्रशस्त कर रहे हैं।

आज ऐसा कौन जैन है जो गिरनार और शत्रुंजय (पालीताना) गया हो और सोनगढ़ न गया हो और वहाँ पर पहुँचकर विशाल जिनमंदिर, समवसरण

मंदिर, स्वाध्यायमंदिर, परमागममंदिर के दर्शन कर कृतार्थ न हुआ हो। शहरी कोलाहल से दूर शांत और निर्जन इस प्रान्त में आत्मा के नाद की गूंज न सुनी हो, रंग-राग और भेद से भिन्न आत्मा की बात कान में न पड़ी हो।

आज सोनगढ़ समयसार और कानजीस्वामी पर्यायवाची हो गये हैं। सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्य के पंच परमागमों को परमागममंदिर में संगमरमर के पाटियों पर उत्कीर्ण करा दिया गया है। सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य का इससे बड़ा स्मारक और क्या होगा, पर कानजीस्वामी कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवंत स्मारक हैं। क्यों न हो, समयसार ने उनके जीवन को जो बदल डाला है। समयसार पाकर उन्होंने क्या नहीं पाया, क्या नहीं छोड़ा। सर्वस्व पाया और सर्वस्व छोड़ा। श्रीमद् रायचन्द्र ने समयसार लानेवाले को खोंवा भर मुद्राएँ दे दी थीं, पर कानजीस्वामी ने तो परंपरागत धार्मिक संप्रदाय ही नहीं उसका गुरुत्व, गौरवपूर्ण जीवन, यश यहाँ तक कि प्राणों तक का मोह छोड़ा।

वे प्राणों की बाजी लगाकर, प्राणों की कीमत पर दिगम्बर (जैन) हुए हैं। दिगम्बरों ने उन्हें क्या दिया? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया, मोक्षमार्गप्रकाशक दिया। तो उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का, मोक्षमार्गप्रकाशक का मर्म दिया। यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्गप्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया।

कौन जानता था कि काठियावाड़ के छोटे से ग्राम उमराला में आज ८७ वर्ष पूर्व वि.सं. १९४६ की वैशाख सुदी २ रविवार के दिन जन्मा बालक कहान इतना महान होगा। श्वेताम्बर स्थानकवासी संप्रदाय में जन्मा बालक कहान बचपन से ही धार्मिक वृत्ति का शांत बालक था। माता उजमबाई और पिता मोतीचंदजी श्रीमाल को एक ज्योतिषी ने बालक कहान को महापुरुष होने का स्पष्ट संकेत किया था। अतः उनका पुत्रप्रेम सहज द्विगुणित हो गया था। साधारण शिक्षा के उपरांत उनके जन्म-स्थान के ही निकटस्थ कस्बा पालेज में

दिव्य-पुरुष ८७ वीं जन्मजयंती

उनके बड़े भाई खुशालचंदजी के साथ उन्हें भी दुकान पर बिठा दिया गया पर उनका मन उसमें नहीं रमा। वे उदासवृत्ति, पर कुशलतापूर्वक, ईमानदारी और पूरी प्रामाणिकता के साथ कार्य करने लगे। सोलह वर्ष की वय में एकबार उन्हें बडौदा के कोर्ट में जाना पड़ा, वहाँ उन्होंने समस्त सत्य को बड़े धैर्य और गंभीरता के साथ रखा। न्यायाधीश पर उनकी सरलता, सहजता, स्पष्ट वक्तृता का ऐसा असर हुआ कि बिना गवाह के ही उनकी बात को प्रमाण मानकर निर्णय दे दिया।

उठते यौवन में उन्होंने 'भक्तध्रुव' आदि नाटक भी देखे। सामान्य युवकों का मन नाटकों के शृंगारिक प्रसंगों में अधिक रमा करता है, पर उनका मन वैराग्य पोषक प्रकरणों में ही अधिक रमा करता था। जिसकी चर्चा आज भी वे बड़े ही भाव-विभोर हो, कभी-कभी अपने प्रवचनों में किया करते हैं।

अंतर व्यापार के अभिलाषी कहान का मन बाह्य व्यापार में न रमा। जब उनसे शादी का प्रस्ताव किया तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मुझे तो दीक्षा लेने का भाव है, मैं शादी नहीं करूँगा। अरे.. अरे..! उन्होंने दीक्षा लेने की बात मात्र कही नहीं, २३ वर्षीय उठते यौवन में ही उन्होंने स्थानकवासी साधु हीराचंदजी के पास वि.सं. १९७० अगहन सुदी ९, रविवार के दिन बड़े ही ठाठ-बाट से दीक्षा ले ली। पर दीक्षा जुलूस में हाथी पर सवार होते समय दीक्षा वस्त्र फट गया। उस समय तो किसी की समझ में कुछ न आया, पर अब कभी-कभी स्वामीजी स्वयं कहते हैं कि मुझे तभी शंका हो गई थी कि सच्चा साधुपना यह नहीं है।

यद्यपि गृहस्थावस्था में भी आपने श्वेताम्बर शास्त्रों का अध्ययन-मनन किया था, तथापि दीक्षित होने पर बाद में उनका बहुत गंभीर अध्ययन किया; पर उनके हाथ कुछ भी न लगा। उन्हें ऐसा लगा जो मेरा प्राप्तव्य है, वह इनमें नहीं है। वे उन पर व्याख्यान करते, प्रवचन करते, हजारों लोग मंत्रमुग्ध हो जाते। स्थानकवासी संप्रदाय में उनकी महान विद्वान, लोकप्रिय प्रवचनकार

और कठोर-साधक साधु के रूप में प्रतिष्ठा थी। उनके भक्तगण मुग्ध थे, पर वे नहीं; वे कुछ और खोज रहे थे। अचानक वि.सं. १९७८ में सयमयसार उनके हाथ लगा। मानो निधि मिल गयी। जिसकी खोज थी, वह पा लिया। वे उसे ले एकांत जंगल में चले गये। उसके पढ़ने में मग्न हो गये, जाते समय ध्यान ही न रहा।

उनका अंतर पुकार उठा कि 'सत्य पंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर' है, पर...। वि. संवत् १९८२ में मोक्षमार्गप्रकाशक हाथ लगा, यह ग्रंथ भी स्वामीजी को अपूर्व लगा, यह ग्रंथराज अपूर्व है भी। यह इतना भाया कि इसका सातवाँ अध्याय तो अपने हाथ से लिख गया, जो आज भी सुरक्षित है।

यह अंतर्बाह्य का संघर्ष वि. संवत् १९९१ तक चलता रहा। आखिर इस नरसिंह ने उसी वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को साधारण गाँव सोनगढ़ में वाड़ा तोड़ ही डाला, मुँहपट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया। क्या ही विचित्र संयोग है कि यह शुभकार्य महावीर जयंती के दिन ही संपन्न हुआ। संप्रदाय में खलबली मच गयी। चारों ओर से भय और प्रलोभनों के पांसे फेंके गये, पर सब बेकार साबित हुए। धर्मांधों ने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया, पर 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःख सुखं।'

कुछ दिनों तक वे अपने एक अनन्य अनुयायी के सोनगढ़ के समीप टेकड़ी पर स्थित टूटे-फूटे मकान में रहे, जो आज भी उसी हालत में विद्यमान है और जिसे गुरुदेव स्वयं कभी-कभी अपने अनुयायियों को ऊंगली के इशारे से बताया करते हैं।

कुछ दिनों के उपरांत ही पुण्य और पवित्रता के धनी इस महापुरुष के, साम्प्रदायिक व्यामोह में हो गये विरोधियों की कषाय शान्त होने लगी और वे झुंड-झुंड गुरुदेव के दर्शनार्थ आने लगे। कुछ यह देखने भी आते कि अब कैसा क्या चल रहा है? पर उनके समक्ष आकर उनके आचार-व्यवहार को देख एवं अभूतपूर्व प्रवचनों को सुन नतमस्तक हुए बिना न रहते।

जन्मजात दिगम्बर जैन भी पहुँचने लगे; कुछ प्रेम से; कुछ भक्ति से, कुछ कुतूहल से, पर जो भी उनके पास पहुँचता, उनका बने बिना न रहता। वह उनके अंतर्बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उनकी वाणी में तो कुन्दकुन्द के अमृत का जादू है ही पर उनका बाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं है।

उनके इस आकस्मिक आकर्षण से विरोधी खेमों में खलबली मच गयी जो आज भी देखी जा सकती है। जो वहाँ जायेगा, उनका हो जायेगा; इससे आशंकित एवं आतंकित होकर वहाँ न जाने की प्रतिज्ञाएँ दिलायी जाने लगी, पर तूफान को कौन रोक सकता है। अमर गायक कवि युगल की 'लो रोको तूफान चला रे... पाखण्डों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे' यह पंक्तियाँ आज भी चुनौती दे रही हैं।

आध्यात्मिक क्रांति का यह सूत्रधार जहाँ भी जाता है, विरोधी भी उसका स्वागत करते हैं, सम्मान करते हैं, अभिनंदन करते हैं। तीन-तीन बार संपूर्ण भारत की ससंघ यात्रायें की हैं, इस महापुरुष के प्रभाव से पचास से अधिक जिनमन्दिरों का निर्माण हुआ है, इनकी पावन प्रेरणा से बीस लाख से ऊपर साहित्य प्रकाशित हुआ है एवं गाँव-गाँव में तत्त्वचर्चा के केन्द्र स्थापित हो गये हैं। छोटे से गाँव में आप व्यापारियों को निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान की चर्चा करते पायेंगे।

यह सब इस महामानव का प्रभाव है कि जिसने आज के भौतिकता-प्रधान युग में भी आध्यात्मिक वातावरण बना दिया है। ऐसा कोई महापुरुष दूसरा बतायें जिसने इनके समान अनंत प्रशंसाओं और निंदाओं का उत्तर तक न दिया हो, जो जगत की प्रशंसा और निंदा से इनके समान अप्रभावित रह अपनी गति से चल रहा हो, जिसने समय (शुद्धात्मा) और समय (टाईम) की ऐसी साधना की हो कि जिसमें समयसार प्रतिबिम्बित हो उठा हो और लोग जिसकी दिनचर्या से अपनी घड़ियाँ मिला लेते हों, उस अंतर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष को शत्-शत् प्रणाम! शत्-शत् प्रणाम!!

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति श्रद्धांजलि

दिव्य-पुरुष ८७वीं जन्मजयंती

परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की ८७वीं पावन जयंती के सुअवसर पर मुझे अपने भाव व्यक्त करते हुए अत्यंत आनंद हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री तो दिगम्बर जैनशासन के इतिहास में एक ऐतिहासिक विभूति हैं। उनके द्वारा यथार्थ तत्त्वज्ञान का पुनरुत्थान हुआ है। बहुत वर्षों से जो अध्यात्म धारा सुप्त पड़ी हुई थी, उसका पूज्य स्वामीजी ने पुनरुत्थान किया है। आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के शब्दों में कहा जावे तो (द्रव्यानुयोग में) "मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वहाँ ही है, उसका निषेध करने से तो मोक्षमार्ग का निषेध होता है।" ऐसे द्रव्यानुयोग अर्थात् अध्यात्म ग्रंथों का आज समाज में प्रचुरता के साथ जो पठन-पाठन हो रहा है, वह सब पूज्य स्वामीजी का ही प्रताप है।

मध्यस्थ दृष्टि से पूर्व इतिहास पर दृष्टिपात किया जावे तो विश्वास होता है कि पूज्य श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव के लगभग १००० वर्ष बाद पूज्य स्वामीजी का आगमन अर्थात् जन्म इस भरतक्षेत्र में जैनशासन की अध्यात्मधारा को प्रवाहित करने में एक कड़ी के रूप में ही हुआ है।

ऐसा लगता है कि भगवान महावीर के लगभग १००० वर्ष बाद ही जब अध्यात्मधारा का प्रवाह मन्द पड़ा होगा, तब परम पूज्य प्रातःस्मरणीय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अवतरण हुआ, जिनके समयसारादि ग्रन्थों ने अध्यात्मधारा को आगामी १००० वर्ष तक प्रवाहित रखा, उसके पुनः मंद पड़ने के समय ही परम पूज्य भगवान अमृतचन्द्राचार्य देव के द्वारा उन अध्यात्म ग्रंथों पर विस्तृत टीका के रूप में स्पष्टीकरण आया और उनके भी लगभग १००० वर्ष के बाद ही, जबकि हम लोगों में उस टीका के भावों को समझने की भी योग्यता नहीं रही, उस समय ही हमारे भाग्योदय से पूज्य श्री कानजीस्वामी का समागम प्राप्त हुआ; जिससे हम सब मुमुक्षु जीव महावीर की वाणी की अध्यात्म धारा के मर्म

को समझकर यथार्थ मार्ग प्राप्त कर रहे हैं, पूर्व इतिहास प्रमाण देता है कि पूज्य स्वामीजी के द्वारा जो स्पष्टीकरण उन ग्रंथों पर आ रहा है, वह आगामी १००० वर्ष तक मुमुक्षु जीवों को सच्चा मोक्षमार्ग प्राप्त करने की कड़ी के रूप में कायम रहेगा।

यह आत्मा तो अनादि का है, और अनादि से अनंत बार भगवान के समवसरण में साक्षात् तीर्थंकर देव का समागम प्राप्त हुआ है लेकिन वहाँ से भी आत्मज्ञान प्राप्त किये बिना यह जीव रह गया, आज उस जीव को यदि पूज्य स्वामीजी के द्वारा वह आत्मबोध प्राप्त हो जाता है तो उनसे ज्यादा बड़ा उपकारी इस जीव के लिये कौन हो सकता है।

पूज्य गुरुदेव के संबंध में तो मैं क्या लिखूँ, मैं तो अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि जो इस महान निकृष्टकाल में, जहाँ पर कि धर्म प्राप्त करना तो दूर रहा, यथार्थ उपदेश मिलना भी दुर्लभ है, ऐसे काल व क्षेत्र में, मेरा ऐसे समय जन्म हुआ, जबकि पूज्य स्वामीजी का सान्निध्य एवं सच्चा तत्त्वबोध सुगमता से प्राप्त हो सका है। अगर दुर्भाग्य से आगे-पीछे के समय में अथवा वर्तमान में ही अन्य ऐसे क्षेत्र में जन्म हो जाता, जहाँ इस तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती थी, तो इस आत्मा की क्या स्थिति होती! अब तो यह विश्वास है कि पूज्य गुरुदेव के द्वारा प्रसादरूप से प्राप्त हुआ जो तत्त्वबोध है, वह आत्मा को पूज्य गुरुदेवश्री के साथ ही साथ चरमगति को प्राप्त कराये बिना नहीं रहेगा।

जो मात्र एक भव में भी अमुक किसी प्रकार का उपकार करता है, उसका भी उपकार भुलाया नहीं जाता तो पूज्य स्वामीजी ने तो अनंत भवों के बंधन तुड़ाने जैसा महान उपकार किया है—ऐसे उपकारी का बदला कैसे चुकाया जावे, यह सूझ नहीं पड़ती। मात्र श्रीमद् राजचन्द्रजी के निम्न वाक्य याद करके ही अपनी भावना व्यक्त करते हैं कि—

अहो! अहो! श्री सद्‌गुरु, करुणा सिंधु अपार।
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो अहो उपकार॥

शुं प्रभुचरण कने धरुं आत्मार्थी सौ हीन।
ते तो प्रभुए आपियो वर्तुं चरणाधीन॥
जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत।
समजाव्युं ते पद नमुं श्री सद्गुरु भगवंत॥

हे गुरुदेव! हम आपका बदला चुकाने में असमर्थ हैं, लेकिन आत्म–विश्वास के साथ वायदा (कौलकरार) करते हैं कि आपके बताये मार्ग का हम अपने आप से कभी वियोग नहीं होने देंगे, तथा चरमगति तक आपका साथ नहीं छोड़ेंगे, यही मेरी आपके प्रति और मेरी आत्मा के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि है।

दास—नेमीचंद पाटनी

दिगम्बर जैनधर्म के सफल प्रचारक श्रद्धेय पूज्य श्री कानजीस्वामी

पूज्य श्री कानजीस्वामीजी वैशाख शुक्ला २ दिनांक १ मई १९७६ को ८६ वर्ष पूरा करके ८७वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस बात को जानकर बहुत खुशी हुई। इस अवसर पर उनकी ८७वीं जन्मगाँठ (जयंती) बड़े हर्ष भरे मन से धूमधाम से मना रहे हैं, यह जानकर भी मन विभोर हो गया।

पूज्य स्वामीजी ने जैन समाज के लिये बहुत उपयुक्त कार्य किया है। अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा उन्होंने लोगों को मिथ्यात्व से बचाने का सराहनीय काम किया है। आपने आगमयुक्त धर्म का सम्यक् ज्ञान से प्रचार किया है। आपकी दिगंबर–जैन तत्त्वज्ञान पर असीम श्रद्धा है और आपने उस तत्त्वज्ञान का प्रचार अखिल भारत में करने का सफल कष्ट उठाया है।

आपके प्रवचनों से जैन समाज बहुत प्रभावित होता है और वह नयी दृष्टि से जैन तत्त्वज्ञान को अपनाता हुआ मन:शांति प्राप्त करता है।

पूज्य स्वामीजी ने अबतक अनेक महान कार्य किये हैं। इसलिये सारा जैन समाज उनका कृतज्ञ है। उनकी ८७वीं जन्मगाँठ के मंगल अवसर पर मेरे श्रद्धारूपी सुमनों की अंजली उनके चरणों पर चढ़ाता हूँ।

—लालचंद हीराचंद, बम्बई

जनमानस की दृष्टि में—

आध्यात्मिक क्रांति के सूत्रधार : श्री कानजीस्वामी

पंडित रतनचंद भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम.ए., बी.एड., विदिशा (म.प्र.)

सोनगढ़ के संत युगपुरुष श्री कानजीस्वामी के अनुपम व्यक्तित्व ने धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में प्राय: सभी विशाल व्यक्तित्वों को प्रभावित किया है। ऐसा कोई भी नहीं बचा जो उनके व्यक्तित्व से अप्रभावित रहा हो। उन्होंने तत्त्वज्ञान की ओर एक नया मोड़ दिया है जो युगों से विस्मृत था। वे वर्तमान आध्यात्मिक क्रांति के सृष्टा हैं। उनका अधिकांश जीवन धर्म भावना से ओतप्रोत और आत्मसाधक के रूप में ही व्यतीत हुआ है एवं हो रहा है। अत: वे सच्चे अर्थों में सन्त व युग पुरुष हैं।

साधु, व्रती, विद्वान, श्रीमान और नेतागण सभी ने स्वामीजी के बारे में समय-समय पर अपने-अपने मनोभाव अभिव्यक्त किये हैं तथा उनके द्वारा हुए तत्त्व प्रचार, दिगम्बर जिनधर्म की प्रभावना, धर्मायतनों के नव-निर्माण के महान कार्यों एवं आध्यात्मिक क्रांति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यहाँ कुछ मनीषियों के विचार उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

सर्वप्रथम, तपोनिधि चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य शांतिसागरजी (दक्षिण) के हृदय में कानजीस्वामी के प्रति जो विचार थे, वे उन्हीं के शब्दों में दृष्टव्य हैं—

(एक बार कुछ व्यक्ति आचार्यश्री के पास जाकर बोले)

''....महाराज! समाज में तो कानजीस्वामी के आत्मधर्म ने गजब मचाया है। उनके समयसार की एकांतिक प्ररूपणा से बड़ी गड़बड़ी होगी, व्यवहारधर्म का व सच्चे धर्म का लोप होगा...। इसलिये आप आदेश निकालें व उनकी प्ररूपणा धर्म बाह्य है, ऐसा जाहिर करें।'' उक्त कथन सुनकर आचार्यश्री ने कहा... ''अगर मेरे सामने प्रवचन के लिये समयसार रखा जायेगा तो मैं भी क्या और कोई भी क्या, वही तो मुझे कहना पड़ेगा, पुण्य-पाप को हेय ही बताना होगा, यही समयसार की विशेषता है। अब रही बात व्यवहार की, व्यवहारधर्म की जीवन में उपयोगिता कैसी है? यह बात कानजीस्वामी को पढ़ाना होगी। उनका निषेध करने से क्या होगा। कानजी का निषेध करके क्या कुन्दकुन्द का निषेध करना है?'' *(१. आचार्य शांतिसागर अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ १५७)*

जैनेन्द्र सिद्धांत कोष के निर्माता प्रशांतमूर्ति तत्त्वरसिक श्री १०५ क्षुल्लक जैनेन्द्र वर्णी के श्री कानजीस्वामी के प्रति उद्‌गार ''....अत्यंत परोक्ष उस तत्त्व का परिचय पाने के लिये जिनवाणी की शरण अथवा ज्ञानीजनों की संगति ही मात्र निमित्तकारण है। अत्यंत दुर्लभ उस सार की प्राप्ति में निमित्तरूप से सहायक होनेवाले उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वतः उत्पन्न न हो जायेगा। भले ही वह ज्ञानी पुरुष विशेष साक्षात् वीतरागी भगवान अरहंत हों या वीतरागी दिगम्बर गुरु हों, या कोई श्रावक हो अथवा गृहस्थ हो, तत्त्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान हैं। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश-पाताल का अंतर है। काठियावाड देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्मयोगी श्री कानजीस्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्म जगत के वासी, अर्थात् श्री कानजीस्वामी के उस महत् उपकार को

कदापि नहीं भुला सकते, जो कि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा भौतिक युग की अंधकारमय जगती पर विलुप्त प्रायः हो जानेवाली अध्यात्मधारा को पुनः नवजीवन प्रदान किया है।'' *(२. सन्मति संदेश, वर्ष-७, अंक-५)*

इसी क्रम में प्रत्यक्षदर्शी, १०५ क्षुल्लक चिदानंदजी महाराज के अनुभव निम्न प्रकार हैं:—

''जब मैं पैदल यात्रा करता हुआ जैनबद्री, मूडबद्री, गिरनार की यात्रा के पश्चात् चिर अभिलषित अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये चातुर्मास के समय सोनगढ़ पहुँचा और चार माह के स्थान पर १४ माह वहाँ रहा। वहाँ मैंने स्वामीजी की धर्मदेशना श्रवण की और वहाँ का अपूर्व शांत वातावरण देखा तो जो आनंद आया, उसको मैं प्रगट करने में असमर्थ हूँ। यही कारण है कि जो वहाँ का वातावरण एक बार अवलोकन कर लेता है, वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।''

''जब स्वामीजी से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कर्ता-कर्म, निमित्त-नैमित्तिक संबंध के विषय में सुना व १४ माह की अवधि में जो अनुभव किया तो जीवन की दिशा ही बदल गयी। वहाँ रहनेवाले मुमुक्षु निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते ही हैं क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है परंतु साथ ही जिनेन्द्र-पूजन, भक्ति, दान, स्वाध्याय आदि की प्रवृत्ति भी उनमें ही देखी जाती है और यह सब स्वामीजी के निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक है, क्योंकि निश्चय के साथ व्यवहार होता है, उसका निषेध कैसे हो सकता है।

(सन्मति संदेश, वर्ष-७, अंक-५, पृष्ठ-२८ (२)

विद्वत् वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त महान दार्शनिक विद्वान स्व. पंडित श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जयपुर ने गुरुदेव के संबंध में लिखा है कि....

''इसमें कोई शक नहीं कि कानजीस्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रांति उत्पन्न हुई है, पुराना पोपडम खत्म हो रहा है और लोगों को नई दिशा

मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकांत निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का संतुलन देख रहे हैं; सौराष्ट्र में अनेकों जिन मंदिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अलाप नहीं करते। वे भगवान कुन्दकुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं, वे आपे में नहीं हैं। उन्होंने न निश्चय को समझा, न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है, उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है।.... निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्धपर्याय आदि दार्शनिक चीज़ें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीज़ों को आंदोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निश्चयदृष्टि से देखना चाहिये। उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है।

संहितासूरि पंडित नाथूलालजी शास्त्री, इंदौर के स्वामीजी के बारे में प्रगट किये गये उद्‌गार निम्न हैं—इस अशांतिपूर्ण भौतिक वातावरण में आत्मधर्म एवं सदाचरण का प्रसार कर जिनशासन की प्रभावना करनेवाले और अपने पुण्यशाली तेजस्वी व्यक्तित्व से अगणित व्यक्तियों के जीवन को बदल देनेवाले महान आध्यात्मिक संत आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इस युग की अनुपम विभूति हैं।.... श्री कानजीस्वामी समस्त उपलब्ध साहित्य (शास्त्रों) का अध्ययन कर चुके हैं। श्री आदरणीय समन्तभद्रस्वामी, जिनेसनस्वामी, अमृतचंद्राचार्य, नेमीचंद्राचार्य आदि के ग्रंथों का भलीभाँति स्वाध्याय करने से उनको सब विषय स्मृति में हैं, उनका स्मृतिज्ञान विलक्षण है।

श्री कानजीस्वामी के जितने प्रवचन हुए, उनका प्रकाशन हुआ है, उन्हें माध्यस्थभाव से देखने पर अविरोधता ही मिलती है। मैं लगभग १५ वर्ष से सोनगढ़ के संपर्क में हूँ, प्रारंभ में मुझे भी स्वामीजी के प्रवचनों में विरोध का आभास हुआ... परंतु धीरे-धीरे जब विचार किया और शास्त्रावलोकन किया

तो वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वर्तमान में अध्यात्म की ओर जनता का झुकाव और स्वाध्याय के प्रचार का श्रेय स्वामीजी को है।

श्री कानजीस्वामी हमारी अध्यात्म परंपरा को पुनर्जीवित करनेवाले इस युग के महान आध्यात्मिक संत हैं। स्वामीजी की शास्त्र अविरुद्ध अनेकांत वाणी और पवित्र व्यक्तित्व का माध्यस्थभाव से अधिकाधिक लाभ उठाकर मनुष्य भव को सफल बनायें। *(१. कानजीस्वामी अभिनंदन ग्रंथ)*

जैन समाज के गौरव, लब्धप्रतिष्ठित व्रती विद्वान पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी ने स्वामीजी से प्रभावित होकर उनके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है कि.... जब से श्री कानजीस्वामी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के समयसार आदि अध्यात्म-ग्रंथों का परिशीलन कर जैनधर्म का यथार्थ मर्म समझा और अपने अनुयायी हजारों भाई-बहिनों को समझाया, तब से दिगंबर जैन समाज की प्रगति में एक नया मोड़ आया है।

(सन्मति संदेश, वर्ष-७, अंक-५)

स्वर्गीय पंडित गोपालदासजी वरैया के सत्प्रयत्न से दिगम्बर जैन समाज में धर्म और न्याय के पठन-पाठन का प्रसार हुआ। श्री १०८ मुनि गणेशकीर्ति महाराज के प्रयत्न से संस्कृत, व्याकरण, दर्शन, साहित्य के पठन-पाठन की रुचि जागी, इसी प्रकार इस युग में श्री कानजीस्वामी के निमित्त से दिगम्बर जैन समाज में अध्यात्म-शास्त्रों के पठन-पाठन की ओर रुचि हो रही है।

वर्तमान काल में धर्म की बात उसी धर्म के अनुयायियों के गले उतारना भी कठिनतर कार्य है, फिर अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़कर पक्षपात रहित ही सत्य को स्वीकार करने की बात तो अत्यंत कठिन है। श्री कानजीस्वामी ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसका बहुत बड़ा मूल्य है।

हमने स्वामीजी को नजदीक से देखा है, परखा है और उनके प्रवचनों को तथा अनुभवों को सुना है, हमें ऐसा विश्वास है कि वे दिगम्बर जिनागम के कट्टर श्रद्धानी हैं... स्वामीजी सरल परिश्रमी हैं। उन्हें वचनपक्ष या अभिमान

नहीं है बल्कि आगमानुकूल बात को वे तत्काल स्वीकार कर लेते हैं।... स्वामीजी प्रतिज्ञारूप प्रतिमा आदि नहीं पालते, तथापि उनके आचरण, खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण, मर्यादित खान-पान, आजीवन ब्रह्मचर्य, मन्द कषाय आदि उनके गुण उनमें और उनके शिष्यों में पाये जाते हैं।

समाज के विवेकशील वर्ग से हमारा निवेदन है कि आगम के प्रकाश में उनके प्रवचनों को देखें। मिथ्या धारणा बनाकर न चलें। .....वे एक महापुरुष हैं, अपना सर्वस्व पूर्ण रूप त्यागकर धर्मरत्न की खोज में चले हैं। उनके साथ धर्म-वत्सलता का वर्ताव करना आवश्यक है, तभी दिगम्बर जैनधर्म की प्रभावना होगी।

सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंद्र शास्त्री बनारस—गुरुदेव के संबंध में अपने हार्दिक उद्‌गार इसप्रकार प्रगट किये हैं—

''इसमें संदेह नहीं कि श्री कानजीस्वामी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावक है और वक्तृत्व शैली अनुपम है, उनके प्रभाव से सोनगढ़ के जैनेतर अधिवासी श्री अध्यात्मचर्चा के प्रेमी बन गये हैं। उक्त कथन के अतिरिक्त मंडन मिश्र की निम्न किंवदंति प्रस्तुत करते हुए सोनगढ़ व स्वामीजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है—''मंडन मिश्र एक बहुत बड़े विद्वान थे, जब शंकराचार्य शास्त्रार्थ के लिये उनके ग्राम में पहुँचे तो उन्होंने ग्राम के बाहर कुंआ पर पानी भरनेवाली स्त्री से मंडन मिश्र का धर पूछा, उस पानी भरनेवाली स्त्री ने उत्तर दिया—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीरांगना यत्र गिरां गिरन्ति
द्वारेपि नीडान्तः सन्निरुद्धा, अवैहि तन्मंडन मिश्र धामः॥

अर्थात्—जिसके द्वार पर पिंजरों में बंद मैनायें 'प्रमाण स्वतः होता है या परतः होता है।' इसप्रकार की चर्चा करती हों, उसे ही मंडन मिश्र का घर समझना। सोनगढ़ के विषय में भी यही समझना चाहिए कि जहाँ के वायु-मंडल में अध्यात्म प्रवाहित हो, वही कानजी का स्थान सोनगढ़ है।

ब्रह्मचारी राजारामजी जैन, गुरुदेव की ७५वीं जन्मजयंती के अवसर पर लिखते हैं कि—

मैं १००८ श्री बाहुबली की दक्षिण यात्रा को महा मस्तकाभिषेक के समय जा रहा था, भोपाल में श्री बाबाजी छोटेलालजी वर्णी का साथ हो गया, उनके साथ स्वर्णपुरी पहुँचा, वहाँ आध्यात्मिक संत श्रद्धेय स्वामीजी के प्रवचन सुनकर मंत्रमुग्ध जैसा हो गया, यात्रा का विकल्प टूट गया, करीब ४ माह लगातार वचनामृत का पान किया, जीवन में अनुपम रहस्य समझा।

भले ही लोग कहें कि व्यवहार उड़ा दिया, मुनि निंदक हैं, परंतु भाई! पक्षपात छोड़कर निर्णय करो, व्यवहार कुशलता, सद्प्रवृत्ति जो सोनगढ़ में है, शायद ही अन्यत्र हो। इतना अवश्य है कि व्यवहार धर्म नहीं, क्योंकि धर्म तो आत्मा की परिणति है। इसलिये बाह्य क्रियाकाण्ड धर्म नहीं हो सकता, ऐसा वे उपदेश करते हैं और अनादि विपरीत मान्यता को छुड़ाते हैं।.... इत्यादि।

इसप्रकार इस लेख में कतिपय, गणमान्य साधु, व्रती एवं विद्वानों के स्वामीजी के विषय में विचारों से परिचित कराने का प्रयास किया है और भी बहुत से मनीषियों के समय-समय पर व्यक्त किये विचारों से परिचित कराके मैं पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अपने श्रद्धा प्रसुन प्रस्तुत करूँगा।

पूज्य स्वामीजी ने क्रमबद्धपर्याय की झंकार कर हम जैसे अनादिकाल से सुसुप्त अनेक प्राणियों को जागृत किया है। अत: हमारे ऊपर अनेक अनंत-अनंत उपकार हैं, जिन्हें जीवन में भुलाया नहीं जा सकता। पूज्य गुरुदेव के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धा समर्पित है।

———

जिसने अपने स्वभाव में ही स्व-स्वामीपना जाना, उसने अपनी परिणति को स्व-स्वभाव में जोड़ दी और विकार से मोड़ दी।—यही है धर्मचक्र का परिणमन और यही है मोक्षमार्ग।

दि
व्य
।
पु
रु
ष

महान तत्त्वचिंतक : कानजीस्वामी

पूज्य गुरुदेव अपने ८६ वर्ष पूर्ण कर ८७वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। यह जन-कल्याण की दृष्टि से हम सबके लिये अपूर्व उपलब्धि है; हम सब भारी धन्यता अनुभव करते हैं। पूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक जगत के एक अलौकिक साधक हैं, उनके समान दिव्य व्यक्तित्ववाले संत विरले होते हैं। पूज्य स्वामीजी ने अपनी प्रखर साधना और श्रद्धा से एक वैचारिक क्रांति का प्रदुर्भाव किया। मनुष्य का अस्तित्व ही सत्य है, सत्य को जानने के लिये मनुष्य को स्वयं को जानना होगा; खुद को जानना ही आत्मबोध है। इस क्रांतिकारी विचार ने मनुष्य में स्वयं को जानने की जिज्ञासा को जगाया—बाहर से हटकर अंदर झांकने की उसकी सुप्त चेतना प्रज्वलित हुई, वह मन-प्राण से तत्त्वचिंतन-मनन में लगा; उसकी उच्च विचार-आचार की भूमिका बनी, वह अनेक गैरजरूरी विश्वासों से छूटा—आत्मा के पूर्ण विकास में पुद्गलद्रव्य भारी ही बाधा हैं, उनसे छुटकारा पाने में ही मनुष्य का पुरुषार्थ है, वही मुक्ति का मार्ग है। इस तथ्य और सत्य को पूज्य गुरुदेव ने जितनी दृढ़ता, निर्भीकता, निश्चलता से अपनी ओजस्वी वाणी में कहा, उस प्रकार का उदाहरण आध्यात्मिक जगत में कम देखने-सुनने को मिलता है। मेरे मन में पूज्य स्वामीजी के प्रति गहरी श्रद्धा रही है, जयंती के पावन अवसर पर मैं उनके प्रति अपनी आंतरिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ। वे दीर्घायु हों, उनकी तेजस्वी वाणी मुखरित होती रहकर जन-जन के लिये 'आत्मबोध' का शाश्वत मार्ग प्रशस्त करती रहे, यह श्रद्धात्मक भावना है। —मिश्रीलाल गंगवाल

८७
वीं
।
ज
न्म
ज
यं
ती

आवश्यक सूचना

आत्मधर्म [हिन्दी] अब जुलाई ७६ से डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल के सम्पादकत्व में जयपुर से नई साज-सज्जा के साथ आकर्षक एवं नए रूप में प्रकाशित होगा। जिसमें पूज्य गुरुदेव के मंगलमय आध्यात्मिक प्रवचनों के साथ महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय एवं नए-नए अनेक स्तम्भ रहेंगे। तत्त्वप्रचार सम्बन्धी समाचारों को भी पर्याप्त स्थान प्राप्त होगा।

तत्सम्बन्धी सभी पत्र व्यवहार श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से कीजिए तथा नए वर्ष का चन्दा आदि भी जयपुर ही भेजें। वार्षिक शुल्क ६ रुपये एवं आजीवन सदस्यता शुल्क १०१ रुपये है।

आत्मधर्म मासिक-पत्र के स्वामित्व आदि की घोषणा

प्रकाशन स्थान—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
प्रकाशन अवधि—प्रत्येक अंग्रेजी माह की ५वीं तारीख
प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक—श्री मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़
तंत्री—श्री पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर
राष्ट्रीयता—भारतीय
स्वत्वाधिकार—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मैं घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही है।

व्यवस्थापक—

दिनांक १-४-७५ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

दिव्य पुरुष ८७ वीं जन्म जयंती

जगत में सबसे सुंदर नगरी

लंका विजय के पश्चात् जब अयोध्या में राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ, तब सबको इच्छित पुरस्कार दिया। रामचंद्रजी ने भरत से भी पूछा कि—बंधु! तुम्हें कौन सी नगरी चाहिये?

तब वैरागी भरत कहते हैं कि—बंधुवर! मुझे तो मोक्षनगरी चाहिये; मैं मोक्षनगरी को अपनी स्थायी राजधानी बनाना चाहता हूँ।

राम कहते हैं—बंधु! वहाँ तो फिर हम दोनों साथ ही चलेंगे; परंतु इस समय तो मैं तुम्हें कोई सुंदर नगरी देना चाहता हूँ।

भरत ने कहा—भाई! मोक्षनगरी में जाने के लिये किसी का साथ कैसा? वहाँ तो जीव अकेला ही जाता है; वहाँ किसी का संग नहीं होता और मोक्षनगरी के अलावा दूसरी कोई नगरी नहीं है, जिसकी मुझे इच्छा हो! मोक्षनगरी ही सच्चा शाश्वत धाम है; उसके सिवा मृत्युलोक की जितनी नगरियाँ हैं, वे सब नाशवंत, किराये के घर समान हैं। मैं तो मोक्षनगरी की राह पर चलना चाहता हूँ; मोक्षनगरी ही जगत में सबसे सुंदर नगरी है।

जगत का सौभाग्य दिव्य पुरुष का अवतार

अहो विधाता! तूने ऐसे दिव्य कल्याणकारी महापुरुष की भेंट देकर जगत के जीवों पर महान उपकार करके अपना विधातापन सार्थक किया है। भारत के उमराला ग्राम में कहानगुरु की मंगल जन्मबधाई द्वारा भारत के भाग्य को गौरव प्रदान किया है और जिनशासन को नवजीवन दिया है। जिनेन्द्रों, मुनीन्द्रों एवं ज्ञानियों के हृदय में प्रवाहित ज्ञानानन्दामृत सरिता के पावन नीर का पान कराके भव्य जीवों को अमरता के पन्थ पर ले जाकर सनाथ बनाया है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (३७२)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति २८००